गल्प-समुच्चय

[परिवर्द्धित संस्करण]

सम्पादक

स्व० प्रेमचन्द्

बनारस,

सरस्वती प्रेस ।

तृतीय सस्करण, जुलाई, १९४१
चतुर्थ सस्करण, नवम्बर, १९४४
पाँचवाँ सस्करण, फरवरी, १९४५

मूल्य—२॥)

मुद्रक
श्रीपतराय, सरस्वती प्रेस,
बनारस।

आमुख

आधुनिक गल्प लेखन कला हिन्दी में अभी बाल्यावस्था में है, इसलिए इससे पाश्चात्य प्रौढ गल्पों की तुलना करना अन्याय होगा। फिर भी इस थोड़े से काल में हिन्दी गल्प कला ने जो उन्नति की है, उसपर यह गर्व करे, तो अनुचित नहीं। हिन्दी में अभी टालस्टाय, चेकाफ़, श्रो, हेनरी डाडे, मोपासाँ का आविर्भाव नहीं हुआ है, पर बिरवा के चिकने पात देखकर कहा जा सकता है, कि यह होनहार है। इस संग्रह में हमने चेष्टा की है, कि हिन्दी के सर्वमान्य गल्पकारों की रचनाओं की बानगी दे दी जाय। हम कहाँ तक सफल हुए हैं, इसका निर्णय पाठक और समालोचकगण ही कर सकते हैं। हमें खेद है, कि इच्छा रहते हुए भी हम अन्य लेखकों की रचनाओं के लिए स्थान न निकाल सके, पर इतना हम कह सकते हैं कि हमने जो सामग्री उपस्थित की है वह हिन्दी गल्प कला की वर्तमान परिस्थिति का परिचय देने के लिए काफी है। इसके साथ ही हमने मनोरंजकता और शिक्षा का भी

ध्यान रखा है। हमें विश्वास है, कि पाठक इस दृष्टि से भी इस संग्रह में कोई अभाव न पायेंगे।

गल्प लेखन कला की विषद रूप से व्याख्या करना हमारा तात्पर्य नहीं। संक्षिप्त रूप से गल्प एक कविता है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग को या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य होता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा विन्यास, सब उसी एक भाव का पुष्टीकरण करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का सम्पूर्ण तथा वृहद् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता, न उपन्यास की भाँति उसमें सभी रसों का सम्मिश्रण होता है। वह रमणीक उद्यान नहीं, जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल बूटे सजे हुए हैं, वरन् एक गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।

हम उन लेखक महाशयों के कृतज्ञ हैं, जिन्होंने उदारता पूर्वक हमें अपनी रचनाओं के उद्धृत करने की अनुमति प्रदान की। हम सम्पादक महानुभावों के भी ऋणी हैं जिनकी बहुमूल्य पत्रिकाओं में से हमने कई गल्पें ली हैं।

प्रेमचन्द

अनुक्रमणिका

पंडित ज्वालादत्त शर्मा

आप मुरादाबाद के निवासी हैं। संस्कृत, फ़ारसी और उर्दू के अच्छे ज्ञाता हैं। आपने उर्दू के कई सुविख्यात कवियों पर आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी हैं। आपकी वर्णन शैली और भाषा सरस है।

अनाथ बालिका

पण्डित राजनाथ, एम० डी० का व्यवसाय साधारण नहीं है। शहर के छोटे बड़े, अमीर ग़रीब सभी उनको अपनी बीमारी में बुलाते हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो आप साधु पुरुष हैं, दूसरे बड़े स्पष्ट वक्ता हैं, तीसरे सदाचार की मूर्त्ति हैं। चालीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी आपने अपना विवाह नहीं किया। ईश्वर की कृपा से आपके पास रुपये और मान की कमी नहीं। अतुल धन और अमित सम्मान के अधिकारी होने पर भी आप बड़े जितेन्द्रिय, निरभिमान और सदाचारी हैं। गोरखपुर में आपको डाक्टरी शुरू किये सिर्फ़ सात वर्ष हुए हैं, पर शहर के छोटे-बड़े सबकी ज़बान पर राजा-बाबू का नाम इस तरह चढ गया है, मानों वे जन्म से ही वहाँ के निवासी हैं। आपका क़द ऊँचा, शरीर छरेरा और चेहरा कान्ति पूर्ण गोरा है। मरीज़ से बात चीत करते ही उसकी तकलीफ़ आप कम कर देते हैं। इस कारण साधारण लोग आपको जादूगर तक समझते हैं। आपके परिवार में सिर्फ़ वृद्धा माता हैं। एक भानजे का भरण पोषण भी आप ही करते हैं। भानजा सतीश कालेज में पढ़ता है।

डाक्टर राजा बाबू ने अनेक मरीज़ों से फ़ारिग़ होकर आज का दैनिक उठाया ही था कि उनके सामने एक ११ १२ वर्ष की निरीह बालिका, आँखों में आँसू भरे हुए, आ खड़ी हुई। डाक्टर साहब समझ गये कि इस बालिका पर कोई भारी विपत्ति आई है। उन्होंने दैनिक को मेज़ पर रखकर बड़े स्नेह के साथ पूछा—

'बेटी,'क्यों रोती हो?'

'डाक्टर साहब कहाँ हैं, मैं उनके पास आई हूँ। मेरी मा का बुरा हाल है।'

'मैं ही डाक्टर साहब हूँ। तुम्हारी मा को क्या शिकायत है?'

'डाक्टर साहब, मेरी मा का बड़े ज़ोर का बुख़ार चढ़ा है। तीन दिन से

वह बेहोश थी। आज कुछ होश हुआ है, तो आपको बुलाने के लिए भेजा है। आप चलकर देख लीजिए।'

'मैं अभी चलता हूँ। तुम घबराओ मत। ईश्वर तुम्हारी मा को नीरोग कर देगा।'

डाक्टर साहब अपना हैंड बेग उठाकर लड़की के साथ पैदल ही चल दिये। लड़की के मना करने पर भी उन्होंने नहीं माना और कहा—तुम्हारा मकान बहुत क़रीब है। मैं भी प्रात काल से गाड़ी में बैठे बैठे थक-सा गया हूँ, इसलिए थोड़ी दूर पैदल चलने की तबियत चाहती है।

डाक्टर साहब पेचदार गलियों में निकलते हुए एक बहुत छोटे मकान में दाख़िल हुए। मकान की अवस्था देखते ही डाक्टर साहब ने समझ लिया कि इसमें रहनेवालों पर चिरकाल से लक्ष्मीजी का कोप मालूम होता है। उन्होंने मकान के भीतर जाकर देखा कि एक छप्पर के नीचे चारपाई पर लड़की की मा लिहाफ़ ओढ़े लेटी हुई है। आँगन में नीम का एक पेड़ है। उसके पत्तों से आँगन भर रहा है। मालूम होता है कि कई दिनों से घर में झाड़ू तक नहीं लगाई गई। लड़की ने अपनी मा की चारपाई के पास पहले से ही एक मूँढा बिछा रखा था, क्योंकि उसने अपनी मा से सुना था कि कोई भी गरीब आदमी डाक्टर साहब के घर से निराश नहीं लौटाया जाता। डाक्टर साहब मूँढे पर बैठ गये। लड़की ने मा के कान में ज़ोर से आवाज़ दी कि डाक्टर साहब आ गये। मा ने मुँह पर से लिहाफ़ उठाया। यद्यपि बीमारी की तक्लीफ़ के कारण उसके चेहरे पर उदासी छाई थी, तथापि उस उदासी के अन्दर से भी डाक्टर साहब ने उसके हृदय की पवित्रता और मानसिक दृढता की निर्मल किरणों को छनते हुए देखा। उन्होंने यह भी जान लिया कि भगवान् के अदृष्ट कोप से यद्यपि यह रोगिणी इस छोटे से मकान में टूटे-फूटे सामान के साथ रहने को विवश कर दी गई, किन्तु एक दिन यह ज़रूर अच्छे घर और बड़े सामान के साथ किसी सुयोग्य पति के हृदय की अधिकारी रही होगी। रोगिणी की अवस्था ४० वर्ष के ऊपर थी। रोग और ग़रीबी ने मिलकर उसके मुख-कमल को मलिन करने में कोई कसर न छोड़ी थी, परन्तु उसके चेहरे पर जिस स्वर्गीय शान्ति का आधिपत्य था, उसे

विपत्ति नहीं हटा सकी थी। रोगिणी के शान्ति पूर्ण चेहरे को देखते ही डाक्टर के हृदय में उसके विषय में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई। उन्होंने अपने स्वभाव-सिद्ध मीठे स्वर से पूछा—

'माजी, आपको क्या तकलीफ़ है? धीरे धीरे अपनी तबियत का हाल कह सुनाइए।'

रोगिणी ने कराहते हुए कहा—

'राजा बाबू तुम दीनबन्धु हो, इसलिए ईश्वर-वत् पूज्य हो। मैं आपसे लज्जा छोड़कर कुछ कहना चाहती हूँ। आशा है, इसके लिए तुम मुझको क्षमा करोगे। संसार में मैंने किसी का एहसान नहीं उठाया, पर मरते समय तुम्हारे एहसान के नीचे मुझे दबना पड़ा। इसलिए ईश्वर तुम्हारा ,
यह कहते कहते रोगिणी के नेत्रों में आँसू भर आये।

राजा-बाबू ने बड़ी नम्रता से कहा—

'माजी, आप तबियत को भारी न कीजिए। मैं आपकी सेवा के लिए तैयार हूँ। आप नि सकोच आज्ञा कीजिए, पर पहले रोग का हाल तो कहिए।'

'डाक्टर साहब, रोग का हाल कुछ नहीं। समय पूरा हो गया है। अब मैं आपसे जो कुछ कहना चाहती हूँ, उसे सुन लीजिए। सरला—जो आपके पीछे खड़ी हुई है—मेरी एक मात्र कन्या है। यह अब अनाथ होती है। इसको मैं आपके सिपुर्द करती हूँ। इसका विवाह मैं न कर सकी, इसलिए मुझे आपसे इतनी बड़ी भिक्षा माँगनी पड़ी। यह घर के काम काज में होशियार है। जो कुछ मैं जानती थी और बता सकती थी, उसकी शिक्षा दे दी है। यह आपकी सेवा करेगी। मुझे पूर्ण आशा है कि यह आपको प्रसन्न रखेगी। समय आने पर आप इसका किसी पढ़े लिखे ब्राह्मण-वर के साथ विवाह कर दें। बस मेरी यही प्रार्थना है। और, हाँ, एक पैकट है, जिसमें दो लिफ़ाफ़े हैं। इनको आप मेरी मृत्यु के एक वर्ष बाद जब चाहें पढ़ें। उनमें मेरा परिचय है—जिसको बताने की और आपको जानने की इस समय ज़रूरत नहीं। दूसरों का उपकार करनेवाले सदा सकट में ही रहते हैं। आप भी परोपकाररत हैं; इसलिए आपको भी वे वास्ते इन सकटों में पड़ना पड़ा।'

इस प्रकार कहते कहते उसका गला भर आया।

राजा बाबू ने उत्तर दिया—

'माजी, मैं आपकी आज्ञा को सहर्ष स्वीकार करता हूँ। मैं आपकी कन्या को सन्तान-वत् रखूँगा। मेरे घर में कोइ बालक नहीं। माताजी सरला को पाकर यथार्थ में बहुत प्रसन्न होंगी। समय आने पर मैं इसका विवाह भी कर दूँगा, पर आप इतना निराश क्यों होती हैं। मुझे आशा है, आप अच्छी हो जायँगी।'

इसके बाद डाक्टर साहब ने रोगिणी की नब्ज आदि देखी। देखने से डाक्टर साहब को मालूम हो गया कि रोगिणी का रोग विषयक बयान बहुत कुछ ठीक है।

उसी दिन शाम को रोगिणी इस संसार से चल बसी।

(२)

विस्मृति भी बड़े काम की चीज है। यह न होती, तो मनुष्य का जीवन बहुत बुरा हो जाता। जन्म से लेकर आज तक हमको जिन-जिन दुखों, क्लेशों और संकटों का सामना करना पड़ा है, वे सब के-सब यदि हर समय हमारी आँखों के सामने खड़े रहते, तो हमारा जीवन भयानक हो जाता। अकेली विस्मृति ही उनसे हमारी रक्षा करती है।

सरला ने मातृ वियोग को सह लिया। माता की याद धीरे धीरे विस्मृति के गर्भ में छिपने लगी। अब उसकी जीवन पुस्तक का एक नया, पर चमचमाता हुआ, पृष्ठ खुला। छोटे से झोपड़े से निकलकर अब उसने महल को मात करनेवाले डाक्टर राजाबाबू के मकान में प्रवेश किया। माता की छत्र-छाया उठ गई, डाक्टर की वृद्ध माता की गोद का आश्रय मिला, पर उसमें भी उसने वही स्नेह-रस परिप्लुत अभय दान पाया।

सरला ने पहले तो कुछ सकोच अनुभव किया, पर अन्नपूर्णा की ममता-पूर्ण और डाक्टर साहब की स्नेह-भरी बातों ने उसको बता दिया कि वह मानों अपने ही घर में है। डाक्टर साहब ने सरला की शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध कर दिया।

सरला भी डाक्टर साहब की यथा शक्य सेवा करने लगी। पर नौकरों की

तरह नहीं, घर के बच्चे की तरह। वह डाक्टर साहब को अपने हाथ से भोजन कराती। अन्नपूर्णाजी यद्यपि अपने देवोपम पुत्र के लिए स्वयं ही भोजन तैयार करतीं, पर सरला फिर भी उनको कुछ कम सहायता न देती। सरला को धीरे धीरे पाक शास्त्र की शिक्षा मिलने लगी। वृद्धा अन्नपूर्णा के निरीक्षण में निरामिषभोजी डाक्टर साहब के लिए विविध प्रकार के शाक, खीर, हलुआ आदि अनेक सुस्वादु और पौष्टिक पदार्थ वह बनाने लगी। प्रात काल होते ही अन्नपूर्णा की पूजा का सामान भी वह ठीक कर देती। घर के बगीचे से फूल लाकर सजा देती और चन्दन आदि सामग्री यथा-स्थान रख देती। अपनी सेवा और सुस्वभाव से—मतलब यह कि—सरला ने डाक्टर साहब और उनकी वृद्धा माता के हृदय में संतान से बढ़कर स्नेह पैदा कर लिया।

बड़े दिन की छुट्टियों में सतीश घर आया। उसने देखा कि घर में एक देवी स्वरूपिणी कन्या रहती है। उसके आलोक से उसने मानों सारा मकान आलोकित पाया। मामा से पूछने पर उसको मालूम हुआ कि वह भी उनकी एक आत्मीया है और कुछ दिनों तक उनके यहाँ रहने के लिए चली आई है। दो-चार दिन तक सतीश को उसके साथ बात-चीत करने में सकोच-सा मालूम हुआ। उधर सलज्जा सरला भी एक नये आदमी के साथ बात-चीत करने में झिझकती रही, पर कुछ ही दिनों में दोनों की तबियतें खुल गईं। फिर तो वे आपस में खूब आलाप करने लगे। सतीश ने सरला से कभी उसका परिचय न पूछा, क्योंकि वह मामाजी की बात को वेद भगवान् की बात समझता था। न सरला ने ही अपना प्रकृत परिचय देने की आवश्यकता समझी। इसमें सन्देह नहीं कि सरला की योग्यता, गृहकार्य कुशलता और उसके पवित्रता पूर्ण आचरण पर सतीश मन से मुग्ध हो गया। सरला भी सतीश के कामों का बड़ा ध्यान रखती। सतीश प्राय देखता कि उसके कपड़े तह किये हुए यथास्थान रखे हैं, वह अपने पढ़ने की पुस्तकें भी—जिनको वह इधर-उधर बिखरी और खुली हुई छोड़ गया था—बन्द की हुई और चुनी हुई पाता। छुट्टियों के अत्यल्प काल में ही सरला ने उसके हृदय में स्थान कर लिया। उसको न मालूम क्यों हर समय सरला का ध्यान रहने लगा। वह अपने मन से भी इसका कारण कई दफे पूछकर कुछ उत्तर न पा

सका था। परन्तु वह जाने या न जाने—और जानने की ज़रूरत भी नहीं—प्रेमदेव की पवित्र किरणों से उसका हृदयाकाश अवश्य ही आलोकित रहने लगा। वह कभी सरला को पढ़ाता—बीसियों नई नई बातें बताता—और कभी घण्टों खाली इधर-उधर की बातें ही करता। मतलब यह कि दोनों की मैत्री दिन-पर दिन मज़बूत होने लगी। छुट्टियाँ समाप्त होने पर जब सतीश कालेज को जाने लगा, तब उसे मकान छोड़ने में बड़ा मीठा दर्द रूप मोह मालूम हुआ, पर वह तत्काल सँभल गया और हमेशा की तरह मामाजी और वृद्धा के चरण छूकर सरला से आँखों ही आँखों उसने विदा ली।

(३)

सतीश सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में पढता है। इस वर्ष वह एम० ए० की अन्तिम परीक्षा देगा। सतीश बड़ा धार्मिक है। वैसे तो हर लडके को, जो हिन्दू-कालेज के बोर्डिङ्ग हाउस में रहता है, स्नान ध्यान और धार्मिक कृत्य सम्पादन करने पडते हैं, किन्तु सतीश ने अपनी बाल्यावस्था के कुल वर्ष अपने मामा डाक्टर राजा बाबू के साथ काटे हैं। इसलिए, नित्य प्रात काल उठना, सन्ध्योपासन करना और परोपकार के लिए दत्त चित्त रहना उसका स्वभाव-सा हो गया है। सतीश छः वर्ष से इस कालेज में पढ रहा है और हर वर्ष परीक्षा में बड़ी नामवरी के साथ पास हो रहा है। सतीश अपने दैवी गुणों के लिए सब लडकों में प्रसिद्ध है। हर एक लडका, किसी न-किसी रूप में उसकी कृपा का पात्र बना है। अनेक कमज़ोर (शरीर में नहीं पढाई में) लड़कों ने उससे पढा है, अनेक गरीब विद्यार्थियों की उसने आर्थिक सहायता की है। किसी लड़के के रोग ग्रस्त होने पर सहोदरवत् उसने उसकी शुश्रूषा भी की है। इसलिए, कालेज का हर लड़का उसको बड़ी पूज्य दृष्टि से देखता है। सतीश के पासवाले कमरे में रामसुन्दर नामक एक लड़का रहता है। वह दो वर्ष से इस कालेज में पढता है। पर, है सतीश का सहाध्यायी ही। यह लड़का घर का मालदार होते हुए भी विद्या का बड़ा प्रेमी है। इसके पिता का हाल में स्वर्गवास हो गया है और यह बहुत बड़ी सम्पत्ति का मालिक हुआ है। पर, फिर भी, इसने पढना नहीं छोड़ा। सतीश के साथ इसकी बड़ी घनिष्ठता है। सतीश और रामसुन्दर की प्रकृति अनेक अंशों में एक सी है।

इसी लिए इन दोनों में ख़ूब मित्रता है। सतीश और रामसुन्दर छुट्टी के समय साथ एक ही साथ रहते हैं।

सतीश और रामसुन्दर एक नाव पर बैठे हुए हैं। नाव पुण्यतोया भागीरथी में धीरे धीरे बह रही है। ग्रीष्म ऋतु की सन्ध्या है। बड़ा लुभावना दृश्य है। तारों का बिम्ब गंगाजल में पड़कर अजीब बहार दिखा रहा है। सच तो यह कि इस 'शाम' के सामने 'शामे लखनऊ' कुछ भी चीज़ नहीं। नाववाला बड़े मीठे स्वर में कोई गीत गा रहा है। उसकी आवाज़ गङ्गा के तट के अट्टालिका सम ऊँचे स्थानों में टकराकर मानों कई गुनी होकर वापिस आ रही है। ये दोनों मित्र आपस में ख़ूब घुल घुलकर बातें कर रहे हैं। अन्त में सतीश ने कहा—

'मित्र, तुम्हारा हृदय बहुत विशाल है। इस बात को मैं स्वीकार करता हूँ। जहाँ तक मेरी शक्ति है, मैं तुमको इस पुण्य कार्य में सहायता दूँगा। तीन मास बाद कालेज बन्द होगा। उस समय तीन मास से अधिक का अवकाश मिलेगा। उसमें मैं तुम्हारे साथ रहूँगा, जहाँ तुम चलोगे, मैं चलूँगा। जहाँ तक पता लगेगा, मैं तुम्हारे मनोरथ के साफल्य के लिए प्रयत्न करूँगा। इस समय इस काम को ईश्वर के ऊपर छोड़ो। परीक्षा के दिन बहुत कम रह गये हैं। इसलिए सब ओर से मन हटाकर इसी ओर लगाना चाहिए। परीक्षा से निवृत्त होकर अपनी सब शक्तियाँ उधर लगायेंगे। मैं तुम्हारा साथ दूँगा।'

रामसुन्दर—भाई सतीश, मुझे तुम्हारा बहुत भरोसा है। पूर्ण आशा है कि यदि तुम जैसे परोपकार व्रती और देवोपम मित्र ने प्रयत्न किया तो मेरा यह कार्य—जिसके कारण मेरी निद्रा और मेरी भूख, दोनों नष्ट हो गई हैं—ज़रूर सिद्ध हो जायगा। तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है—

'यद्यपि जग दारुण दुख नाना।
सबतें कठिन जाति अपमाना।'

नाव धीरे धीरे किनारे पर आ लगी और ये दोनों नवयुवक उससे उतरकर कालेज की ओर चल दिये।

(४)

सरला की माता को मरे दो वर्ष बीत गये। सरला निश्चिन्तता पूर्वक

डाक्टर-बाबू के यहाँ रहती है। उसको अपनी माता की याद आती है जरूर; पर डाक्टर और उनकी वृद्धा माता के सद्व्यवहार से उसको कोई कष्ट नहीं; बल्कि यह कहना चाहिए कि कोई ऐसा सुख नहीं, जो उसको प्राप्त न हो। राजा-बाबू उसको अपनी ही पुत्री समझते हैं। उसने भी अपने गुणों से उनको खूब प्रसन्न कर रखा है।

राजा बाबू ने दो वर्ष बाद उस लिफ़ाफ़े को खोला, जिसको पढ़ने की आज्ञा सरला की माता, मरते समय दे गई थी। उसमें दो लिफ़ाफ़े थे। जिस पर नम्बर एक पड़ा था, उसको खोलकर डाक्टर साहब पढ़ने लगे। उसमें लिखा था—

'आप मेरे परम हितैषी हैं। जो ऐसा न होता, तो यह लिफाफ़ा आप न पढ़ते। अब तक यह कब का अग्निदेव के सिपुर्द हो चुका होता। आप मेरी कन्या के संरक्षक हैं। इस कारण मैं आपसे नीचे लिखा वृत्तान्त कहती हूँ। सुनिए—

मेरे पति दो भाई थे। पति की मृत्यु के बाद मेरे जेठ ने मुझसे अच्छा व्यवहार न किया। उन्होंने एक दिन क्रोध-वश मुझे मकान से निकल जाने तक की आज्ञा दे दी। मेरे पति ने मरते समय बिना विचार किये ही, अपने भाई की आज्ञा का पालन करने का आदेश मुझे दिया था, इसलिए स्वर्गगत पतिदेव की आज्ञा का स्मरण करके मुझे अपने जेठ की अत्यन्त अनुचित और अकारण दी हुई आज्ञा को शिरोधार्य करना पड़ा। मैं अपनी एक मात्र कन्या को लेकर घर से निकल चली। ओफ़, कैसी भीषण रात्रि थी! उस समय के दुःख का हाल किसी भले और सामान्य घर की स्त्री के मन से ही पूछना चाहिए। मेरे शरीर पर कुछ आभूषण थे। उन्हीं के सहारे मैं कई सौ मील की यात्रा करके यहाँ आई और एक साधारण सा मकान लेकर रहने लगी। मैंने जीवन भर प्रतिष्ठा के साथ अपना और अपनी प्यारी बेटी का पेट पाला। मैंने 'आन को रखा, जान गवाकर' बस मेरा यही रहस्य है। अब यदि आप मेरा पूरा परिचय प्राप्त करना चाहें, तो दूसरे लिफ़ाफ़े को खोलिए। उसमें आपको मेरे जेठ का लिखा हुआ एक रजिस्टर्ड एकरारनामा मिलेगा। उसमें उन्होंने मेरे पति की सम्पत्ति को मेरी सम्पत्ति से अलग, अर्थात् विभक्त बनाया

हैं। उसमें मेरे पतिदेव का पूरा पता भी प्रसङ्गवश आ गया है। उसको आप साधारण काग़ज न समझिए। उसके द्वारा मेरी एकमात्र कन्या सरला—ईश्वर उसे सानन्द रखे— एक दिन लाख रुपये से अधिक मूल्यवाली सम्पत्ति की अधिकारिणी बन सकती है, पर मैं नहीं चाहती कि उसका प्रयाग किया जाय। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरी सरला अपने गुणों के कारण ही बहुत बड़ी सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी।

अन्त में, मैं आपको हृदय से आशीर्वाद देती हूँ कि ईश्वर आपका भला करें, क्योंकि आपने मेरा और मेरी कन्या का भला किया है।'

डाक्टर राजनाथ को पत्र पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बहुत देर तक ईश्वरीय माया और मरनेवाली सती की दृढ प्रतिज्ञा पर विचार करते रहे। उन्होंने दूसरा लिफ़ाफा बिना पढ़े ही अपने बाक्स में बन्द कर दिया।

(५)

जब डाक्टर राजनाथ ने सतीश के पत्र में यह पढ़ा कि वह परीक्षा देकर मकान पर न आयेगा, तब उनको बड़ी चिन्ता हुई। उसका विचार कुछ दिनों इधर उधर घूमने का है। और ख़र्चे के लिए पाँच सौ रुपये उसने माँगे हैं। राजनाथ ने पाँच सौ रुपये का नोट नीचे लिखी चिट्ठी के साथ उसके पास भेज दिया—

'प्रिय सतीश,

मुझे बड़ा विस्मय है कि तुम किधर जा रहे हो और क्यों! माताजी तुमको देखने के लिए बड़ी व्यग्र हैं, पर मुझे भरोसा है कि तुम किसी अच्छे उद्देश्य से ही जा रहे हो। ख़र्च भेजता हूँ। यथासाध्य शीघ्र लौटना।

शुभानुध्यायी—

राजनाथ।'

पाँचवे छठे दिन इसका उत्तर आ गया। उसमें लिखा था—

'पूज्य मामाजी, प्रणाम।

कृपा पत्र और ५००) का नोट मिला। मेरे मित्र पण्डित रामसुन्दर को आप जानते ही हैं। उनका एक बहुत ही आवश्यक कार्य है, जिसमें वे मेरी सहायता चाहते हैं। उस कार्य के लिए इधर उधर घूमना पड़ेगा। मैं आपको

पहिले पत्र में ही वह कार्य बता देता, जिसके लिए यह तैयारी है, पर उसको गुप्त रखने के लिए उन्होंने ताकीद कर दी है। अब आप यदि आज्ञा दें, तो मैं उनके साथ चला जाऊँ। आपके उत्तर की मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

सेवक—

सतीश।'

पत्र को पढ़कर राजा बाबू कुछ देर तक सोचते रहे। फिर उन्होंने नीचे लिखा हुआ प्रत्युत्तर अपने भानजे को भेजा—

'प्रिय सतीश,

मैं बड़ी प्रसन्नता से तुमको अपने मित्र के कार्य में सहायता देने की आज्ञा देता हूँ। ख़र्च के लिए जिस क़दर रुपये की और जरूरत हो, निस्संकोच मँगा लेना। यात्रा से लौटते समय अपने मित्र को भी एक दिन के लिए इधर लाना। उनको बहुत दिनों से मैंने नहीं देखा। देखने की तबियत चाहती है। आशा है, वे मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

शुभैषी—

राजनाथ।'

राजा बाबू ने पत्र समाप्त ही किया था कि सरला ने चाँदी की तश्तरी में कुछ तराशे हुए फल उनके सामने रख दिये। राजा-बाबू फल खाते खाते सरला से इधर उधर की बातें करने लगे।

(६)

गरमी की बड़ी छुट्टियों के ८-१० दिन ही बाक़ी हैं। सतीश ने अबकी बार छुट्टी के तीनों महीने बाहर ही काटे। कल उसकी चिट्ठी आई कि वह आज रात को रामसुन्दर सहित मकान पहुँचेगा। उसका कमरा साफ़ किया गया है। वृद्धा माता भी आज बड़ी खुशी से भोजन बना रही हैं। सरला के मन की आज अद्भुत दशा है। कभी तो वह हर्ष के मारे उछलने लगती है और कभी अज्ञात कारण से उसकी गति और भी कम पड़ जाती है। उसका मुख सरोज घड़ी घड़ी पर इन भावों के अस्तोदय के साथ खिलता और मुरझाता है। उसने यह भी सुना है कि सतीश के साथ उसके मित्र भी आयेंगे;

जिनके काम में उसने अपनी सारी छुट्टियाँ ख़र्च की हैं। सरला मन ही मन सतीश के मित्र पर नाराज़ भी है, क्योंकि उसके कारण ही सतीश की छुट्टियों से वह फ़ायदा नहीं उठा सकी।

सतीश रात ६ बजे की ट्रेन से मकान पहुँच गया। राजा बाबू उसकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। उन्होंने बड़े प्रेम से रामसुन्दर को अपने पास बिठाया और बड़े आग्रह से पूछा—'मुझे आशा है, तुम अपनी चेष्टाओं में अवश्य सफल हुए होगे।' रामसुन्दर ने निराशा भरी आवाज़ में उत्तर दिया—'सफलता का कोई चिह्न नहीं मिला। भविष्यत् के लिए कोई आशा भी बाकी नहीं रही।' इसपर डाक्टर साहब ने उसे ढाढ़स देकर उसके चित्त क्षोभ को बहुत कुछ कम कर दिया।

सतीश मामाजी के चरण छूकर अन्दर गया। सरला को देखते ही उसका मुख कमल खिल उठा। उसने देखा कि उसके काम की हर चीज़ ठीक रखी हुई है और बड़ी सावधानता से उसके आने की बाट देखी जा रही है। सरला ने मुस्कराकर, पर ताने के साथ, पूछा—

'अबकी बार आपने कुल छुट्टियाँ बाहर ही बिता दीं।'

'मित्र के काम के लिए यह सब करना पड़ा, पर कोई फल न हुआ। इसके लिए मुझे भी दुःख है।'

'आपके मित्र का ऐसा क्या काम था जिसके लिए तीन महीने इधर-उधर घूमना पड़ा और फिर भी काम न हो सका?'

'उस काम का ज़िक्र करने से भी, सरला, मुझे दुःख होता है। इसलिए, सुनकर तुम भी दुःखी हुए बिना न रह सकोगी। भोजन की बात तो कहो, क्या देर है? भूख लग रही है।'

'बिलकुल तैयार है। मैं जाकर नौकर से आसन बिछाने के लिए कहती हूँ। आप, मामाजी और अपने मित्र को साथ लेकर आइए।'

यह कहकर सरला बड़ी फ़ुर्ती से चली गई। उसने बड़े क़रीने से भोजन चुनना शुरू किया। तीन थाली में भोजन चुना गया। जिन चीज़ों को गरम रखने की ज़रूरत थी, वे अभी तक गरम पानी में रखी हुई थीं, भोजन के साथ नहीं परोसी गई थीं। थोड़ी देर में डाक्टर साहब सतीश और रामसुन्दर

के साथ आ पहुँचे। भोजन शुरू हुआ, सरला ने बड़ी होशियारी से परोसना आरम्भ किया। भोजन करते समय इधर-उधर की बातें होने लगीं—

सतीश—मामाजी, स्टेशनों पर बहुत बुरा भोजन मिलता है। भाई रामसुन्दर, बलिया के स्टेशन की पूड़ियाँ याद हैं?

रामसुन्दर—और लखनऊ के स्टेशन के 'निखालिस दूध' को तो कभी न भूलिएगा।

सतीश—पर तरकारी तो किसी स्टेशन की भूलने की नहीं।

डा० सा०—ऐसे मौक़ों पर तो फल खा लेने चाहिए।

सतीश—मामाजी, बड़े स्टेशनों को छोड़कर और स्टेशनों पर फल नहीं मिलते।

बातें भी जारी थीं, खाना भी जारी था। सरला का परोसना भी जारी था। रामसुन्दर यद्यपि बातों में योग दे रहा था, पर उसका ध्यान सरला ही की ओर था। वह बार बार उसी को देखता था। उसकी इस हरकत से सतीश को थोड़ी सी भीतर जलन पैदा हुई। मानिनी सरला ने भी मन में कुछ बुरा माना। भोजन खत्म हुआ। रामसुन्दर और सतीश ने एक कण्ठ से कहा—तीन महीने में आज ही तृप्त होकर भोजन किया है।

चलते समय रामसुन्दर ने मुड़कर एक बार फिर सरला को देखा। अबकी बार तो सतीश जल ही गया। दोनों मित्र बाहर आये। सतीश को गुस्सा आ ही रहा था कि रामसुन्दर की इस बेहूदा हरकत पर उसको लानत मलामत दे कि इतने ही में उसने पूछा—

'भाई, यह लड़की कौन है? जब मैं पहले तुम्हारे यहाँ आया था, तब तो यहाँ यह न थी।'

मानों सतीश की प्रदीप्त क्रोधाग्नि पर मिट्टी का तेल पड़ा। उसने बड़ी घृणा के साथ कहा—

'रामसुन्दर, तुम बड़े नीच हो। जब तक खाते रहे, तब तक उसकी ओर घूरते रहे। जब खाकर बाहर आये, तब फिर फिरकर उसकी ओर देखा किये। अब तुम्हारी नीचता इतनी बढ़ गई कि मुझसे भी उसी प्रकार के प्रश्न करने लगे। मुझे तुम्हारी नैतिक अवस्था पर बड़ा दुःख है।'

सतीश की यह अपवाद सुनकर रामसुन्दर को ज़रा भी क्रोध न आया। उसने बड़े विनीत भाव से कहा—

'भाई साहब, आप क्या कह रहे हैं! जो कुछ आपने मेरे आचरण के विषय में कहा, ठीक है, पर यह आचरण किस दृष्टि से देखना चाहिए, इस पर आपने विचार नहीं किया। मैं समझता हूँ कि हमारा सैकड़ों मील इधर-उधर घूमना बेकार हुआ। जिसकी हमको तलाश थी, वह हमारे ही घर में मौजूद है। मैं सच कहता हूँ कि कई बार मेरे जी में आया कि अपनी नन्हीं को हृदय से लगा लूँ। आप मामाजी से इसके विषय में पूछिए तो, मेरा हृदय कूद रहा है। कार्य सिद्ध हो गया।'

बड़े ही विस्मय और उलझन के साथ सतीश ने पूछा—रामसुन्दर, क्या सच कहते हो, यही तुम्हारी बहिन—नन्हीं है?

'मेरी अवस्था आठ वर्ष की थी, जब प्यारी नन्हीं हमसे जुदा हुई थी। मुझे अब तक उसका चेहरा खूब याद है। वह हँसता हुआ स्वर्गीय कान्ति-पूर्ण चेहरा, आज भी मेरी आँखों के सामने फिर रहा है। सरला से उसका चेहरा बहुत मिलता है। मुझे खूब याद है, उसके गाल पर दो छोटे छोटे स्याह तिल थे। सरला के चेहरे पर भी वैसे ही हैं। चलो, मामाजी से इसके विषय में पूछ-ताछ करें।'

दोनों मित्र तत्काल डाक्टर साहब के कमरे में आये। डाक्टर साहब आराम कुर्सी पर लेटे कोई व्यवसाय सम्बन्धी पुस्तक पढना ही चाहते थे कि ये दोनों वहाँ पहुँच गये। उन्होंने कहा—

'सतीश, अब आराम करो। बहुत थके हो।'

सतीश ने धीरे से कहा—मामाजी, रामसुन्दर सरला के विषय में आपसे कुछ पूछना चाहते हैं!

डाक्टर साहब ने भाव-पूर्ण दृष्टि से रामसुन्दर को देखा, जिसका चेहरा हर्ष और विस्मय के मिले हुए भाव से एक विशेष प्रकार का आकार धारण कर रहा था।

डाक्टर साहब ने कहा—

'सरला के विषय में आप क्या और क्यों पूछना चाहते हैं।'

रामसुन्दर बड़े विनीत भाव से बोला—

'मामाजी ! आज मैं अपने घर का एक रहस्य सुनाता हूँ ।'

उसी के विषय में मैं और भाई सतीश, इधर उधर सैकड़ों मील घूमा किये । मगर सफलता तो क्या, उसके चिह्न तक भी नहीं मिले । अब मैं उस रहस्य को सुनाता हूँ । मेरे पिता दो भाई थे—रामप्रसाद और शिवप्रसाद । रामप्रसादजी मेरे पिता थे । शिवप्रसादजी के एक कन्या थी, जिसको घर के लोग स्नेहवश नन्हीं कहा करते थे । वह मुझसे छ वर्ष छोटी थी । मेरे चाचा—नन्हीं के पिता—का देहान्त मेरे पिता के सामने ही हो गया था । मेरी चाचीजी का स्वभाव बड़ा उग्र था । वे अपनी आन की बड़ी पक्की थीं । एक दिन मेरे पिता ने किसी घरेलू बात पर गुस्सा होकर उनसे घर से निकल जाने की बहुत ही बुरी बात कह दी । उसके लिए उनको सदा पश्चात्ताप रहा । और इस बड़े भारी कलक को साथ लिये ही उन्होंने इह-लोक परित्याग किया । मेरी चाची ने उसी रात को घर छोड़ दिया । नन्हीं को भी वे साथ ले गईं । मेरे पिता ने बहुत तलाश की , पर पता न लगा । मरते समय उन्होंने मुझको अन्तिम वसीअत के तौर पर यही कहा कि 'जिस तरह हो, अपनी चाची और बहिन का पता लगाना । यदि पता लग जाय, तो उनकी सम्पत्ति मय उस दिन तक के सूद के उनको दे देना । इस तरह मेरी आत्मा के कलक धोने की चेष्टा करना । मेरा गया श्राद्ध इसे ही समझना । यदि पता न लगे, तो तू भी विवाह मत करना । अपने शरीर के साथ ही वश की समाप्ति कर देना , क्योंकि इस कलक के साथ वश वृद्धि करना मानो कलक जिन्दा रखना है । बेटा, वशनाश ही इस पाप का एक छोटा सा, पर भयानक प्रायश्चित्त है । आशा है, तुम इस प्रायश्चित्त द्वारा, मेरे कारण अपने वश पर लगे इस कलक से उसको मुक्त करने का—ज़रूरत हुई तो—सुप्रयत्न करोगे ।' यह कहते-कहते मेरे पिता के प्राण पखेरू उड़ गये । उनकी मृत्यु के बाद से ही मैं व्यग्र था कि इस विषय मे मैं क्या करूँ । भाई सतीशचन्द्र से मैंने अपना रहस्य खोलकर कह दिया था और इन्होंने सदा की तरह मेरे इस दुःख में भी भाग लेना स्वीकार कर लिया था । अब जैसा कि आपको मालूम है, हम लोग सैकड़ों मील का चक्कर और न मालूम किन-किन मुसीबतों को

झेलकर वापिस आ गये और कार्य सिद्धि न हुई। पर, यहाँ आकर—यह सरला को देखकर—मेरी अन्तरात्मा बार बार यह कह रही है, कि यही मेरी बहन नन्हीं है। अब आप कृपा करके यह बतलाइए कि सरला के विषय में मेरी जो यह धारणा है, उसको आप अमूलक तो नहीं समझते ?'

डाक्टर साहब ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया—

'रामसुन्दर, मैं इसके उत्तर में स्वयं कुछ न कहकर तुमको वे पत्र दिये देता हूँ, जो सरला की माता ने मरते समय सरला के साथ ही मुझे सिपुर्द किये थे। मुझे प्रतीत होता है कि तुम अपनी चेष्टाओं में सफल हुआ चाहते हो।'

डाक्टर साहब ने बाक्स खोलकर वे दोनों लिफाफे रामसुन्दर के हाथ में दे दिये, जो सरला की माता ने उनको दिये थे। रामसुन्दर ने दोनों लिफ़ाफ़ों को खोलकर पढ़ा। उनको पढ़ते ही उसको निश्चय हो गया कि उसकी चाची का ही यह पत्र है और उसके पिता का ही वह इक़रार-नामा है। सरला भी प्यारी नन्हीं के सिवा और कोई नहीं। रामसुन्दर डाक्टर बाबू के चरणों पर गिर पड़ा और सतीश, जो इस अभिनय को देखकर आश्चर्य में डूब रहा था, उठकर बाहर चला गया। डाक्टर बाबू ने सरला को बुलाया। वह तुरन्त आकर उपस्थित हो गई। रामसुन्दर भावावेश को न रोक सका और सरला को हृदय से लगाकर अश्रुतर्पण करने लगा। यदि डाक्टर बाबू सरला से यह न कहते, तो वह अपने को बड़ी विपत्ति में समझती—

'बेटी, ये तुम्हारे भाई रामसुन्दर हैं। तुम्हारी तलाश में बहुत दूर तक घूम आये हैं। तुम उस दिन कहती थीं कि तुम्हारी माता तुमसे कभी-कभी जिक्र किया करतीं थी कि सरला, तुम्हारे एक भाई है। वह अवश्य एक दिन तुमको मिलेगा। आज तुम्हारी स्वर्गीया माता की भविष्यद्वाणी पूरी हुई।'

(७)

चार मास के बाद डाक्टर राजनाथ ने नीचे लिखा हुआ निमन्त्रण पत्र अपने मित्रों के नाम भेजा—

'प्रिय महोदय,

मेरे भानजे श्रीसतीशचन्द्र विद्यानिधि, एम० ए० का विवाह जौनपुर के

सुप्रसिद्ध रईस स्वर्गीय पण्डित शिवप्रसादजी की कन्या के साथ होना निश्चित हुआ है। आपसे प्रार्थना है कि वसन्त-पञ्चमी के दिन शाम को मेरे निवास-स्थान पर पधारकर भोज में सम्मिलित हूजिए और दूसरे दिन प्रात काल ६ बजे की ट्रेन से बारात में सम्मिलित होकर मेरी मान-वृद्धि कीजिए।

निवेदक—

राजनाथ।'

कहने की ज़रूरत नहीं कि सरला का विवाह सतीश के साथ बड़ी धूम-धाम से हो गया। रामसुन्दर ने उसकी कुल सम्पत्ति दहेज में सरला के अर्पण कर दी। आज तक रामसुन्दर और सतीश मित्रता के ही ज़बरदस्त पाश में बद्ध थे। अब वे मित्रता और आत्मीयता के डबल पाश में बेतरह जकड़ गये।

जयशंकर 'प्रसाद'

स्व० श्रीजयशंकर 'प्रसाद' का जन्म 'सुँघनी साहु' नामक एक प्रतिष्ठित तथा धनी वैश्य परिवार में १८८९ ई० में हुआ था। प्रसादजी ने अंग्रेज़ी की ८ वें दर्जे तक की शिक्षा घर पर पाई। १५ वर्ष की आयु में ही वे लिखने लगे थे। प्रथम उनकी एक कविता १९०६ ई० में 'भारतेन्दु' में प्रकाशित हुई थी।

प्रसादजी ने नवीन युग का द्वार हिन्दी में खोला था। वे कविता की नवीन धारा के प्रवर्तक और उसके सर्वमान्य श्रेष्ठ कवि थे। हिन्दी के नाटक साहित्य में उनकी देन सबसे अधिक है और वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार के रूप में भी विख्यात हैं।

कथा-साहित्य भी उनसे कीर्तिवान् बना है। १६११ से, जब हिन्दी के अपने मौलिक कहानी लेखक नहीं थे, तबसे उसके भाण्डार को उन्होंने भरा है। साहित्य के इन विविध अंगों की पूर्ति के साथ साथ उन्होंने साहित्य तथा खोज सम्बन्धी निबन्ध भी लिखे हैं, जिनका स्थान साहित्य में बहुत ऊँचा है।

'आज सात दिन हो गये पीने की कौन कहे, छुआ तक नहीं। आज सातवाँ दिन है सरकार।'

'तुम झूठे हो। अभी तो तुम्हारे कपड़े से महक आ रही है।'

'वह वह तो कई दिन हुए। सात दिन से ऊपर—कई दिन हुए—अँधेरे में बोतल उँड़ेलने लगा था। कपड़े पर गिर जाने से नशा भी न आया। और आपको कहने का, क्या कहूँ सच मानिए। सात दिन—ठीक सात दिन से एक बूँद भी नहीं।'

ठाकुर सरदारसिंह हँसने लगे। लखनऊ में लड़का पढता था। ठाकुर साहब भी कभी कभी वहीं आ जाते। उनको कहानी सुनने का चसका था। खोजने पर यही शराबी मिला। वह रात को, दोपहर में, कभी-कभी सवेरे भी आ जाता। अपनी लच्छेदार कहानी सुनाकर ठाकुर का मनोविनोद करता।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा— तो आज पियोगे न!

'झूठ कैसे कहूँ। आज तो जितना मिलेगा, सबकी पिऊँगा। सात दिन चने चबेने पर बिताये किस लिए!'

'अद्भुत! सात दिन पेट काटकर, आज अच्छा भोजन न करके तुम्हें पीने की सूझी है! यह भी '

'सरकार! मौज बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दु ख पूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिये जा सकते हैं।'

'अच्छा, आज दिन भर तुमने क्या क्या किया है?'

'मैंने! अच्छा सुनिए—सवेरे कुहरा पड़ता था। मेरे धुआँसे कम्बल-सा वह भी सूर्य के चारों ओर लिपटा था। हम दोनों मुँह छिपाये पड़े थे।'

ठाकुर साहब ने हँसकर कहा—अच्छा, तो इस मुँह छिपाने का कोई कारण!

'सात दिन से एक बूँद भी गले न उतरी थी। भला मैं कैसे मुँह दिखा सकता था! और जब बारह बजे धूप निकली, तो फिर लाचारी थी। उठा, हाथ मुँह धोने में जो दुःख हुआ सरकार, वह क्या कहने की बात है! पास

में पैसे बचे थे। चना चबाने से दाँत भाग रहे थे। कट-कटी लग रही थी। पराठेवाले के यहाँ पहुँचा, धीरे धीरे खाता रहा और अपने को सेंकता भी रहा। फिर गोमती किनारे चला गया। घूमते-घूमते अँधेरा हो गया, बूँदे पड़ने लगीं। तब कहीं भागा और आपके पास आ गया।'

'अच्छा, जो उस दिन तुमने गड़ेरियेवाली कहानी सुनाई थी, जिसमें आसफ़ुद्दौला ने उसकी लड़की का आँचल भुने हुए भुट्टे के दानों के बदले, मोतियों से भर दिया था, वह क्या सच है?'

'सच! अरे वह ग़रीब लड़की भूख से उसे चबाकर थू थू करने लगी! रोने लगी। ऐसी निदय दिल्लगी बड़े लोग कर ही बैठते हैं। सुना है, श्रीराम-चन्द्र ने भी हनुमानजी से ऐसी ही '

ठाकुर साहब ठठाकर हँसने लगे। पेट पकड़कर हँसते हँसते लोट गये। साँस बटोरते हुए सम्हलकर बोले—और बड़प्पन कहते किसे हैं? कंगाल तो कंगाल! गधी लड़की! भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी। मैं सच कहता हूँ, आज तक तुमने जितनी कहानियाँ सुनाईं, सब में बड़ी टीस थी। शाहज़ादों के दुखड़े, रग-महल की अभागिनी बेगमों के निष्फल प्रेम, करुण-कथा और पीड़ा से भरी हुई कहानियाँ ही तुम्हें आती हैं, पर ऐसी हँसानेवाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हें अपने सामने ही बढ़िया शराब पिला सकता हूँ।

'सरकार! बूढ़ों से सुने हुए वे नवाबी के सोने से दिन! अमीरों की रँग रेलियाँ! दुखियों की दर्द भरी आहें! रग महलों में घुल-घुलकर मरने वाली बेगमें अपने आप सिर में चक्कर काटती रहती हैं। मैं उनकी पीड़ा से रोने लगता हूँ। अमीर कंगाल हो जाते हैं। बड़े बड़े घमण्ड चूर होकर धूल में मिल जाते हैं। तब भी दुनिया बड़ी पागल है। मैं उसको, पागलपन को भूलने के लिए शराब पीने लगता हूँ—सरकार! नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगाता!'

ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे। अँगीठी में कोयला दहक रहा था। शराबी सरदी से ठिठुरा जा रहा था। वह हाथ सेंकने लगा। सहसा नींद से चौंककर ठाकुर साहब ने कहा—

अच्छा जाओ, मुझे नींद लग रही है। वह देखो, एक रुपया पड़ा है, उठा लो। लल्लू को भेजते जाओ।

शराबी रुपया उठाकर धीरे से खिसका। लल्लू था ठाकुर साहब का जमादार। उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की बगलवाली कोठरी के पास पहुँचा, तो उसे सुकुमार कण्ठ से सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा। वह खड़ा होकर सुनने लगा।

'तो सूअर! रोता क्यों है? कुँअर साहब ने दो ही लात न लगाई है! कुछ गोली तो नहीं मार दी?'—कर्कश स्वर से लल्लू बोल रहा था, किन्तु उत्तर में सिसकियों के साथ एकाध हिचकी ही सुनाई पड़ जाती। अब और भी कठोरता से लल्लू ने कहा—मधुआ! जा सो रह! नख़रा न कर, नहीं तो उठूँगा तो खाल उधेड़ दूँगा! समझा न!

शराबी चुपचाप सुन रहा था। बालक की सिसकी और बढ़ने लगी। फिर उसे सुनाई पड़ा—ले, अब भागता है कि नहीं! क्यों मार खाने पर तुला है?

भयभीत बालक बाहर चला आ रहा था। शराबी ने उसके छोटे से सुन्दर गोरे मुँह को देखा। आँसू की बूँदें ढुलक रही थीं। बड़े दुलार से पोंछते हुए उसे लेकर वह फाटक के बाहर चला आया। दस बज रहे थे। कड़ाके की सरदी। दोनों चुपचाप चलने लगे। शराबी की मौन सहानुभूति का उस छोटे से सरल हृदय ने स्वीकार कर लिया। वह चुप हो गया। अभी वह एक तंग गली पर रुका था कि बालक के फिर से सिसकने की उसे आहट लगी। वह भी झिड़ककर बोल उठा—

'अब क्या रोता है रे छोकरे!'

'मैंने दिन भर से कुछ खाया नहीं।'

'कुछ खाया नहीं, इतने बड़े अमीर के यहाँ रहता है और दिन भर तुझे खाने को नहीं मिला!'

'यही तो मैं कहने गया था जमादार के पास, मार तो रोज़ ही खाता हूँ। आज तो खाना ही नहीं मिला। कुँअर साहब का ओवरकोट लिये खेल में दिन-भर साथ रहा। सात बजे लौटा, तो और भी ९ बजे तक कुछ काम

करना पड़ा। आटा रख नहीं सका था। रोटी बनती तो कैसे। जमादार से कहने गया था।'—भूख की बात कहते कहते बालक के ऊपर उसकी दीनता और भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया। वह फिर हिचकियाँ लेने लगा।

शराबी उसका हाथ पकड़कर घसीटता हुआ गली में ले चला। एक गन्दी कोठरी का दरवाजा खोलकर बालक को लिये हुए वह भीतर पहुँचा। टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जलाकर वह फटे कम्बल के नीचे से कुछ खोजने लगा। एक पराठे का टुकड़ा मिला। शराबी उसे बालक के हाथ में देकर बोला—तब तक तू इसे चबा, मैं तेरा गढ़ा भरने के लिए कुछ और ले आऊँ—सुनता है रे छोकरे! रोना मत, रोयेगा तो खूब पीटूँगा! मुझसे रोने से बड़ा बैर है। पाजी कहीं का, मुझे भी रुलाने का

शराबी गली के बाहर भागा। उसके हाथ में एक रुपया था। बारह आने का एक देसी अद्धा और दो आने का चाँप दो आने की पकौड़ी, नहीं नहीं आलू-मटर अच्छा, न सही। चारों आने का मांस ही लूँगा, पर यह छोकरा! इसका गढ़ा जो भरना होगा, यह कितना खायगा और क्या खायगा! ओह! आज तक तो कभी मैंने दूसरों के खाने का सोच किया ही नहीं। तो क्या ले चलूँ! पहले एक अद्धा ही ले लूँ!—इतना सोचते-सोचते उसकी आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी। उसने अपने को मिठाई की दूकान पर खड़ा पाया। वह शराब का अद्धा लेना भूलकर मिठाई पूरी ख़रीदने लगा। नमकीन लेना भी न भूला। पूरे एक रुपये का सामान लेकर वह दूकान से हटा। जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा। अपनी कोठरी में पहुँचकर उसने दोनों की पाँत बालक के सामने सजा दी। उसकी सुगन्ध से बालक के गले में एक तरह की तरावट पहुँची। वह मुस्कराने लगा।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उँड़ेलते हुए कहा—नटखट कहीं का, हँसता है! सोंधी बास नाक में पहुँची न! ले, खूब ठूँसकर खा ले, और रोया कि पिटा!

दोनों ने बहुत दिन पर मिलनेवाले दो मित्रों की तरह साथ बैठकर भर-पेट

खाया। सीली जगह में सोते हुए बालक ने शराबी का पुराना बड़ा कोट ओढ़ लिया था। जब उसे नींद आ गई, तो शराबी भी कम्बल तानकर बड़बड़ाने लगा—सोचा था, आज सात दिन पर भर पेट पीकर सोऊँगा, लेकिन यह छोटा-सा रोना पाजी, न जाने कहाँ से आ धमका!

  

एक चिन्तापूर्ण आलोक में आज पहले पहल शराबी ने आँख खोलकर, कोठरी में बिखरी हुई दारिद्र्य की विभूति को देखा और देखा उस घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए निरीह बालक को। उसने तिलमिलाकर मन ही-मन प्रश्न किया—किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की? आह री नियति! तब इसको लेकर मुझे घरबारी बनना पड़ेगा क्या? दुर्भाग्य! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी इतनी माया-ममता—जिस पर आज तक केवल बोतल का ही अधिकार था—इसका पक्ष क्यों लेने लगी? इस छोटे से पाजी ने मेरे जीवन के लिए कौन सा इन्द्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है? तब क्या करूँ? कोई काम करूँ? कैसे दोनों का पेट चलेगा? नहीं, भगा दूँगा इसे—आँख तो खोले!

बालक अँगड़ाई ले रहा था। उठ बैठा। शराबी ने कहा—ले, उठ, कुछ खा ले। अभी रात का बचा हुआ है, और अपनी राह देख! तेरा नाम क्या है रे?

बालक ने सहज हँसी हँसकर कहा—मधुआ। भला हाथ मुँह भी न धोऊँ, खाने लगूँ! और जाऊँगा कहाँ?

'आह! कहाँ बताऊँ इसे कि चला जाय! कह दूँ कि भाड़ में जा, किन्तु वह आज तक दु:ख की भट्ठी में जलता ही तो रहा है। तो ' वह चुपचाप घर से झल्लाकर सोचता हुआ निकला—ले पाजी, अब यहाँ लौटूँगा ही नहीं। तू ही इस कोठरी में रह!

शराबी घर से निकला। गोमती किनारे पहुँचने पर उसे स्मरण हुआ कि वह कितनी ही बातें सोचता आ रहा था, पर कुछ भी न सोच सका। हाथ-मुँह धोने में लगा। उजली हुई धूप निकल आई थी। वह चुपचाप गोमती

की धारा को देख रहा था। धूप की गरमी से सुखी होकर वह चिन्ता भुलाने का प्रयत्न कर रहा था, कि किसी ने पुकारा—

'भले आदमी रहे कहाँ ? सालों पर दिखाई पड़े। तुमको खोजते खोजते मैं थक गया।'

शराबी ने चौंककर देखा। वह कोई जान पहचान का तो मालूम होता था, पर कौन है, यह ठीक ठीक नहीं जान सका।

उसने फिर कहा—तुम्हीं से कह रहे हैं। सुनते हो, उठा ले जाओ अपनी सान धरने की कल, नहीं तो सड़क पर फेंक दूँगा। एक ही तो कोठरी, जिसका मैं दो रुपये किराया देता हूँ, उसमें क्या मुझे अपना कुछ रखने के लिए नहीं है ?

'ओ हो ? रामजी, तुम हो, भाई मैं तो भूल गया था। तो चलो आज ही उसे उठा लाता हूँ।'—कहते हुए शराबी ने सोचा—अच्छी रही, उसी को बेचकर कुछ दिनों तक काम चलेगा।

गोमती नहाकर, रामजी उसका साथी, पास ही अपने घर पर पहुँचा। शराबी को कल देते हुए उसने कहा—ले जाओ, किसी तरह मेरा इससे पिण्ड छूटे।

बहुत दिनों पर आज उसको कल ढोना पड़ा। किसी तरह अपनी कोठरी में पहुँचकर उसने देखा कि बालक चुपचाप बैठा है। बड़बड़ाते हुए उसने पूछा—क्यों रे, तू ने कुछ खा लिया कि नहीं ?

'भर पेट खा चुका हूँ, और वह देखो तुम्हारे लिए भी रख दिया है।'—कहकर उसने अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी से उस रूखी कोठरी को तर कर दिया। शराबी एक क्षण भर चुप रहा। फिर चुपचाप जलपान करने लगा। मन ही मन सोच रहा था—यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है ? चलूँ, फिर लेकर सान देने का काम चलता करूँ। दोनों का पेट भरेगा। वही पुराना चरखा फिर सिर पड़ा। नहीं तो, दो बातें किस्सा कहानी इधर-उधर की कहकर, अपना काम चला ही लेता था। पर अब तो बिना कुछ किये घर नहीं चलने का। जल पीकर बोला—क्यों रे मधुआ, अब तू कहाँ जायगा ?

'कहीं नहीं !'

'यह लो, तो फिर क्या यहाँ जमा गड़ी है, कि मैं खोद खोदकर तुझे मिठाई खिलाता रहूँगा !'

'तब कोई काम करना चाहिए !'

'करेगा !'

'जो कहो !'

'अच्छा, तो आज से मेरे साथ-साथ घूमना पड़ेगा। यह कल तेरे लिए लाया हूँ। चल, आज से तुझे सान सिखाऊँगा। कहाँ रहूँगा, इसका कुछ ठीक नहीं। पेड़ के नीचे रात बिता सकेगा न ?'

'कहीं भी रह सकूँगा, पर उस ठाकुर की नौकरी न कर सकूँगा !'

शराबी ने एक बार स्थिर दृष्टि से उसे देखा। बालक की आँखें दृढ़ निश्चय की सौगन्ध खा रही थीं।

शराबी ने मन ही मन कहा—बैठे बैठाये यह हत्या कहाँ से लगी। अब तो शराब न पीने की मुझे भी सौगन्ध लेनी पड़ी।

वह साथ ले जानेवाली वस्तुओं को बटोरने लगा। एक गट्ठर का और दूसरा कल का, दो बोझ हुए।

शराबी ने पूछा—तू किसे उठायेगा ?

'जिसे कहो !'

'अच्छा, तेरा बाप जो मुझको पकड़े तो ?'

'कोई नहीं पकड़ेगा, चलो अभी। मेरे बाप मर गये !'

शराबी आश्चर्य से उसका मुँह देखता हुआ कल उठाकर खड़ा हो गया। बालक ने गठरी लादी। दोनों कोठरी छोड़कर चल पड़े।

—

महाशय सुदर्शन

आप पंजाब के निवासी हैं। आप कई समाचार-पत्रों का सम्पादन भी कर चुके हैं। आपका हिन्दी और उर्दू—दोनों ही भाषाओं—पर अधिकार है। आपके गल्प बड़े मनोरंजक, शिक्षाप्रद और भाव-पूर्ण होते हैं। आपके गल्पों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आप अच्छे नाटककार भी हैं। आपको दो बार 'पंजाब-टैक्स्ट-बुक कमेटी' से पुरस्कार मिल चुके हैं। आपकी शैली बड़ी मर्मस्पर्शी तथा लालित्य-पूर्ण है। मनोभावों का चित्रण करने में आप निपुण हैं।

लरसनवाल, ज़िला गुजरात, का पालू उन मनुष्यों में से था जो गुणों की गुथली कहे जाते हैं। यदि वह गाँव में न होता, तो होलियों में झाँकियों का, दीवाली पर जुए का, और दशहरे पर रामलीला का प्रबन्ध कठिन हो जाता था। उन दिनों उसे खाने पीने तक की सुधि न रहती और वह तन मन से इन कार्यों में लीन रहता था। गाँव में कोई गानेवाला आ जाता, तो लोग पालू के पास जाते कि देखो कुछ राग विद्या जानता भी है, या यों ही हमें गँवार समझकर हमें धोखा देने आ गया है। पालू अभिमान से सिर हिलाता और उत्तर देता—पालू के रहते हुए तो यह असम्भव है, पीछे की भगवान जाने। केवल इतना ही नहीं, वह बाँसुरी और घड़ा बजाने में भी पूरा उस्ताद था। हीर-राँझे का किस्सा पढने में तो दूर दूर तक कोई उसके जोड़ का न था। दोपहर के समय जब वह पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर ऊँचे स्वर से जोगी और सहती के प्रश्नोत्तर पढता, तो सारे गाँव के लोग इकट्ठे हो जाते और उसकी प्रशंसा के पुल बाँध देते। उसके स्वर में जादू था। वह कुछ दिन के लिए भी बाहर चला जाता, तो गाँव में उदासी छा जाती। पर उसके घर के लोग उसके गुणों को नहीं जानते थे। पालू मन ही मन इसपर बहुत कुढता था। तीसरे पहर घर जाता, तो मा ठण्डी रोटियाँ सामने रख देती। रोटियाँ ठण्डी होती थीं, परन्तु गालियों की भाजी गर्म होती थी, उसपर भावजें मीठे तानों से कड़वी मिर्चें छिड़क देती थीं, पालू उन मिर्चों से कभी कभी बिलबिला उठता था, परन्तु लोगों की सहानुभूति मिश्री की डली का काम दे जाती थी।

वे तीन भाई थे—सुचालू, बालू और पालू। सुचालू गवर्नमेंट स्कूल गुजरात में व्यायाम का मास्टर था, इसलिए लोग उसे सुचालमल के नाम से पुकारते थे। बालू दूकान करता था, उसे बालकराम कहते थे। परन्तु पालू की रुचि सर्वथा खेल-कूद ही में थी। पिता समझाता, मा उपदेश करती, भाई निष्ठुर दृष्टि से देखते। मगर पालू सुना-अनसुना कर देता और अपने रंग में मस्त रहता।

इसी प्रकार पालू की आयु के तैंतीस वर्ष बीत गये, परन्तु कोई लड़की देने को तैयार न हुआ। मा दुखी होती थी, मगर पालू हँसकर टाल देता और कहता—मैं ब्याह करके क्या करूँगा? मुझे इस बन्धन से दूर ही रहने दो। परन्तु विधाता के लेख को कौन मिटा सकता है। पाँच मील की दूरी पर टाँडा नामक ग्राम है। वहाँ के एक चौधरी ने पालू को देखा है, तो लट्टू हो गया। रूप रंग में सुंदर था, शरीर सुडौल। आत-पात पूछकर उसने अपनी बेटी ब्याह दी।

(२)

पालू के जीवन में पलटा आ गया। पहले वह दिन के बारह घण्टे बाहर रहता था और घर से ऐसा घबराता था, जैसे चिड़िया पिंजरे से। परन्तु अब वही पिंजरा उसके लिए फूलों की वाटिका बन गया, जिससे बाहर पाँव रखते हुए उसका चित्त उदास हो जाता था। स्त्री क्या आई, उसका संसार बदल गया। अब उसे न बाँसुरी से प्रेम था, न किस्सों से प्रीति। लोग कहते, यार! कैसे जोरू दास हो, कभी बाहर ही नहीं निकलते। हमारे सब साज-समाज उजड़ गये। क्या भाभी कभी कमरे से बाहर निकलने की भी आज्ञा नहीं देती? मा कहती, बेटा ब्याह सबके होते आये हैं, परन्तु तेरे सरीखा निर्लज्ज किसी को नहीं देखा कि दिन-रात स्त्री के पास बैठा ही रहे। पिता उसके मुँह पर उसे कुछ कहना उचित नहीं समझता था, मगर सुनाकर कह दिया करता था कि जब मेरा ब्याह हुआ था, तब मैंने दिन के समय तीन वर्ष तक स्त्री के साथ बात तक न की थी। पर अब तो समय का रंग ही पलट गया है। आज ब्याह होता है, कल घुल घुलकर बातें होने लगती हैं। पालू लाख अनपढ़ था, परन्तु मूर्ख नहीं था कि इन बातों का अर्थ न समझता। पर स्वभाव का बेपरवा था, हँसकर टाल देता। होते होते नौबत यहाँ तक पहुँची, कि भाई-भावजें बात बात में ताने मारने और घृणा की दृष्टि से देखने लगीं। मनुष्य सब कुछ सह लेता है, पर अपमान नहीं सह सकता। पालू भी बार-बार के अपमान को देखकर चुप न रह सका। एक दिन पिता के सामने जाकर बोला—यह क्या रोज़ रोज़ ऐसा ही होता रहेगा?

पिता भी उससे बहुत दुःखी था, झल्लाकर बोला—

'तुम्हारे जैसों के साथ इसी तरह होना चाहिए।'

'पराई बेटी को विष खिला दूँ ?'

'नहीं, गले में डाल लो। जगत् में तुम्हारा अनोखा ब्याह हुआ है।'

पालू ने कुछ धीरज से पूछा—आप अपना विचार प्रकट कर दें। मैं भी तो कुछ जान पाऊँ।

'सारे गाँव में तुम्हारी मिट्टी उड़ रही है। अभी बतलाने की बात बाक़ी रह गई है ?'

'पर मैंने ऐसी कोई बात नहीं की, जिससे मेरी निन्दा हो।'

'सारा दिन स्त्री के पास बैठे रहते हो, यह क्या कोई थोड़ी निन्दा की बात है ? तुम सुधर जाओ, नहीं तो सारी आयु रोते रहोगे। हमारा क्या है, नदी-किनारे के रूख हैं, आज हैं, कल बह गये, परन्तु इतना तो सन्तोष रहे, कि जीते जी अपने सब पुत्रों को कमाते-खाते देख लिया।'

कहते कहते पिता के नेत्रों में आँसू भर आये। उसकी एक एक बात जँची-तुली थी।

पालू को अपनी भूल का ज्ञान हो गया, सिर झुकाकर बोला—तो जो कहें वही करने को उद्यत हूँ।

इतनी जल्दी काम बन जायगा, पिता को यह आशा न थी। प्रसन्न होकर कहने लगा—जो कहूँगा, करोगे ?

'हाँ करूँगा।'

'स्त्री को उसके घर भेज दो।'

पालू को ऐसा प्रतीत हुआ मानों किसी ने विष का प्याला सामने रख दिया हो। यदि उसे यह कहा जाता, कि तुम घर से बाहर चले जाओ और एक-दो वर्ष वापस न लौटो, तो वह सिर न हिलाता, परन्तु इस बात से, जो उसकी भूलों की निकृष्टतर स्वीकृति थी, उसके अन्तःकरण को दारुण दुःख हुआ। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों उसका पिता उसे दण्ड दे रहा है और उससे प्रतीकार ले रहा है। वह दण्ड भुगतने को तैयार था, परन्तु उसका पिता इस बात को जान पाये, यह उसे स्वीकार न था। वह इसे अपने

लिए अपमान का कारण समझता था, इसलिए कुछ क्षण चुप रहकर उसने क्रोध से काँपते हुए उत्तर दिया—

'यह न होगा।'

'मेरी कुछ भी परवा न करोगे?'

'करूँगा, पर स्त्री को उसके घर न भेजूँगा।'

'तो मैं भी तुम्हें परांठे न खिलाता रहूँगा। कल से किनारा करो।'

जब मनुष्य को क्रोध आता है, तो सबसे पहले जीभ बेकाबू होती है। पालू ने भी उचित-अनुचित का विचार किया और अकड़कर उत्तर दिया—मैं इसी तरह से खाऊँगा और देखूँगा कि मुझे चौके से कौन उठा देता है!

बात साधारण थी, परन्तु हृदय में गाँठ बँध गई। पालू को उसकी स्त्री ने भी समझाया, मा ने भी, पर उसने किसी की बात पर कान न दिया, और बे परवाई से सबको टाल दिया। दिन को प्रेम के दौर चलते, रात को स्वर्ग वायु के झकोरे आते। पालू की स्त्री की गोद में दो वर्ष का बालक खेलता था, जिसपर माता पिता दोनों न्योछावर थे। एकाएक उजाले में अन्धकार ने सिर निकाला। गाँव में विशूचिका का रोग फूट पड़ा, जिसका पहला शिकार पालू की स्त्री हुई।

(३)

पालू विलक्षण मनुष्य था। धीरता और नम्रता उसके स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल थी। बाल्यावस्था में वह बे परवा था। बे परवाई चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। आठ आठ दिन घर से बाहर रहना उसके लिए साधारण बात थी। फिर विवाह हुआ, प्रेम ने हृदय के साथ पाँवों को भी जकड़ लिया। यह वह समय था, जब उसके नेत्र एकाएक बाह्य संसार की ओर से बन्द हो गये और वह इस प्रकार प्रेम पाश में फँस गया, जैसे—शहद में मक्खी। मित्र-मण्डली नोंक झोंक करती थी, भाई बंधु आँखों में मुसकुराते थे, मगर उसके नेत्र और कान—दोनों बन्द थे। परन्तु जब स्त्री भी मर गई, तो पालू की प्रकृति फिर चंचल हो उठी। इस चंचलता को न खेल-तमाशे रोक सके, न मनोरञ्जक क़िस्से कहानियाँ। वह दोनों रास्ते उससे पददलित किये जा चुके थे। प्राय ऐसा देखा गया है कि पढ़े-लिखे लोगों की अपेक्षा

अनपढ और मूर्ख लोग अपनी टेक का ज्यादा ख़याल रखते हैं और इसके लिए तन मन धन तक न्योछावर कर देते हैं। पालू में यह गुण कूट कूटकर भरा हुआ था। माता पिता ने दुबारा विवाह करने की ठानी, परन्तु पालू ने स्वीकार न किया और उनके बहुत कहने सुनने पर कहा कि जिस बन्धन से एक बार छूट चुका हूँ, उसमें दुबारा न फँसूँगा। गृहस्थ का सुख भोग मेरे प्रारब्ध में न था, यदि होता तो मेरी पहली स्त्री क्यों मरती। अब तो इसी प्रकार जीवन बिता दूँगा, परन्तु यह अवस्था भी अधिक समय तक न रह सकी। तीन मास के अन्दर अन्दर उसके माता पिता—दोनों चल बसे। पालू के हृदय पर दूसरी चोट लगी। क्रिया कर्म से निवृत्त हुआ, तो रोता हुआ बड़ी भावज के पाँवों में गिर पड़ा और बोला—अब तो तुम्हीं बचा सकती हो, अन्यथा मेरे मरने में कोई कसर नहीं।

भावज ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा—मैं तुम्हें पुत्रों से बढ़कर चाहूँगी। क्या हुआ, जो तुम्हारे माता-पिता मर गये। हम तो जीते हैं।

'यह नहीं, मेरे बेटे को सँभालो। मैं अब घर में न रहूँगा।'

उसकी भाभी अवाक् रह गई। पालू अब सम्पत्ति बाँटने के लिए झगड़ा करेगा, उसे इस बात की शङ्का थी, परन्तु यह सुनकर कि पालू घर बार छोड़ जाने को उद्यत है, उसका हृदय आनन्द से झूमने लगा। मगर अपने हर्ष को छिपाकर बोली—

'यह क्या! तुम हमें छोड़ जाओगे, तो हमारा जी यहाँ कैसे लगेगा!'

'नहीं, अब यह घर भूत के समान काटने दौड़ता है। मैं यहाँ रहूँगा, तो जीता न बचूँगा। मेरे बच्चे के सिर पर हाथ रखो। मुझे न धन चाहिए, न सम्पत्ति। मैं सांसारिक बन्धों से मुक्त होना चाहता हूँ। अब मैं सन्यासी बनूँगा।'

यह कहकर अपने पुत्र सुखदयाल को पकड़कर भावज की गोद में डाल दिया और रोते हुए बोला—इसकी मा मर चुकी है, पिता सन्यासी हो रहा है। परमात्मा के लिए इसका हृदय न दुखाना।

बालक ने जब देखा कि पिता रो रहा है, तो वह भी रोने लगा और

उसके गले लिपट गया, परन्तु पालू के पाँव की यह स्नेह रज्जु भी न बाँध सकी। उसने हृदय पर पत्थर रखा और अपने सङ्कल्प को दृढ़ कर लिया।

कैसा हृदय बेधक दृश्य था, सायङ्काल को जब पशु पक्षी अपने अपने बच्चों के पास घरों को वापस लौट रहे थे, पालू अपने बच्चे को छोड़कर घर से बाहर जा रहा था।

(४)

दो वर्ष बीत गये। पालू की अवस्था में आकाश-पाताल का अन्तर पड़ गया। वह पर्वत पर रहता था, पत्थरों पर सोता था, रात्रि को जागता था और प्रति क्षण ईश्वर-भक्ति में मग्न रहता था। उसके इस आत्म संयम की, सारे हृषीकेश में, धूम मच गई। लोग कहते, यह मनुष्य नहीं देवता है। यात्री लोग जब तक स्वामी विद्यानन्द के दर्शन न कर लेते, अपनी यात्रा को सफल न समझते। उसकी कुटिया बहुत दूर पर्वत की कन्दरा में थी, परन्तु उसके आकर्षण से लोग वहाँ खिंचे चले आते थे। उसकी कुटिया में रुपये पैसे और फल-मेवे के ढेर लगे रहते थे, परन्तु वह त्याग का मूर्तिमान् रूप उनकी ओर आँख भी न उठाता था। हाँ, इतना लाभ अवश्य हुआ कि उनके निमित्त स्वामीजी के बीसों चेले बन गये। स्वामीजी के मुखमण्डल पर तेज बरसता था, जैसे सूरज से किरणें निकलती हैं। परन्तु, इतना होते हुए भी मन को शान्ति न थी। बहुधा सोचा करते कि देश-देशान्तर में मेरी भक्ति की धूम मच रही है, दूर दूर मेरे यश के डङ्के बज रहे हैं, मेरे संयम को देखकर बड़े बड़े महात्मा चकित रह जाते हैं, परन्तु मेरे मन को शान्ति क्यों नहीं। सोता हूँ, तो सुख की निद्रा नहीं आती, जगता हूँ तो पूजा पाठ में मन एकाग्र नहीं होता। इसका कारण क्या है? उन्हें कई बार ऐसा अनुभव हुआ कि चित्त में अशान्ति है, पर वह क्यों है, इसका पता न लगता।

इसी प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गये। स्वामी विद्यानन्द की कीर्ति सारे हृषीकेश में फैल गई, परन्तु इतना होने पर भी उनका हृदय शान्त न था। प्रायः उनके कान में आवाज आती थी कि तू अपने आदर्श से दूर जा रहा है। स्वामीजी बैठे बैठे चौंक उठते, मानो किसी ने काँटा चुभा दिया हो। बार

बार सोचते, परन्तु कारण समझ में न आता। तब घबराकर रोने लग जाते। इससे मन तो हल्का हो जाता था, परन्तु चित्त को शान्ति फिर भी न होती। उस समय सोचते—संसार मुझे धर्मावतार समझ रहा है, पर कौन जानता है कि यहाँ आठों पहर आग सुलग रही है। पता नहीं, पिछले जन्म में कौन पाप किये थे, जिससे अब तक आत्मा को शान्ति नहीं मिलती।

अन्त में उन्होंने एक दिन दण्ड हाथ में लिया और अपने गुरु स्वामी प्रकाशानन्द के पास पहुँचे। उस समय वे रामायण की कथा से निवृत्त हुए थे। उन्होंने ज्यों ही स्वामी विद्यानन्द को देखा, फूल की तरह खिल गये। उनको विद्यानन्द पर गर्व था। हँसकर बोले—

'कहिए, क्या हाल है, शरीर तो अच्छा है?'

परन्तु स्वामी विद्यानन्द ने कोई उत्तर न दिया, और रोते हुए उनके चरणों से लिपट गये।

स्वामी प्रकाशानन्द को बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने सबसे अधिक मान नीय शिष्य को रोते देखकर उनकी आत्मा पर आघात सा लगा। उन्हें प्यार से उठाकर बोले—क्यों कुशल तो है?

स्वामी विद्यानन्द ने बालकों की तरह फूट फूटकर रोते हुए कहा—' महाराज, मैं पाखण्डी हूँ। संसार मुझे धर्मावतार कह रहा है, परन्तु मेरे मन में अभी तक अशान्ति भरी हुई है। मेरा चित्त आठों पहर अशान्त रहता है।

जिस प्रकार भले-चंगे मनुष्य को देखने के कुछ क्षण पश्चात् उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर विश्वास नहीं होता, उसी प्रकार स्वामी प्रकाशानन्द को अपने सदाचारी शिष्य की बात पर विश्वास न हुआ, और उन्होंने व्यंग्य से, मानो उनके कानों ने धोखा खाया हो, पूछा—क्या कहा?

स्वामी विद्यानन्द ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—महाराज, मेरा शरीर दग्ध हो गया है, परन्तु आत्मा अभी तक निर्मल नहीं हुई।

'इससे तुम्हारा अभिप्राय क्या है?'

'मैं प्रतिक्षण अशान्त रहता हूँ, मानो कोई कर्तव्य है, जिसे मैं पूरा नहीं कर रहा हूँ।'

'इसका कारण क्या हो सकता है, जानते हो ?'

'जानता, तो आपकी सेवा में क्यों आता ?'

एकाएक स्वामी प्रकाशानन्द को कोई बात याद आ गई। वे हँसकर बोले—तुम्हारी स्त्री है ?

'उसकी मृत्यु ही तो सन्यास का कारण हुई थी।'

'माता ?'

'वह भी नहीं।'

'पिता ?'

'वह भी मर चुके हैं।'

'कोई बाल बच्चा ?'

'हाँ एक बालक है, वह चार वर्ष का होगा।'

'उसका पालन कौन करता है ?'

'मेरा भाई और उसकी स्त्री।'

स्वामी प्रकाशानन्द का मुख मण्डल चमक उठा। हँसकर बोले—

'तुम्हारी शान्ति का कारण मालूम हो गया, हम कल तुम्हारे गाँव को चलेंगे।'

विद्यानन्द ने नम्रता से पूछा—

'मुझे शान्ति मिल जायगी ?'

'अवश्य, परन्तु कल अपने गाँव की तैयारी करो।'

(५)

पालू के मित्रों में लाला गणपतराय का पुत्र भोलानाथ हाँडा बड़ा सज्जन पुरुष था। लखनवाल के लोग उसकी सज्जनता पर लट्टू थे। उसे पालू के साथ प्रेम था। उसके मन की स्वच्छता, उसका भोलापन, उसकी निःस्वार्थता पर भोलानाथ तन मन से न्योछावर था। जब तक पालू लखनवाल में रहा, भोलानाथ ने सदैव उसकी सहायता की। वे दोनों जोहड़ के किनारे बैठते, धर्मशाला में जाकर खेलते, मन्दिर में जाकर कथा सुनते। लोग देखते तो कहते, कृष्ण सुदामा की जोड़ी है। परन्तु कृष्ण के आदर सत्कार करने पर भी

जब सुदामा ने वन का रास्ता लिया, तब कृष्ण को बहुत दुःख हुआ, इसके पश्चात् उनको किसी ने खुलकर हँसते नहीं देखा।

भोलानाथ ने पालू का पता लगाने की बड़ी चेष्टा की, परन्तु जब यत्न करने पर भी सफलता न हुई, तब उसके पुत्र सुखदयाल की ओर ध्यान दिया। प्राय बालकराम के घर चले जाते और सुखदयाल को गोद में उठा लेते, चूमते, प्यार करते, पैसे देते। कभी कभी उठाकर घर भी ले जाते। वहाँ उसे दूध पिलाते, मिठाई खिलाते और बाहर साथ ले जाते। लोगों से कहते—यह अनाथ है, इसे देखकर मेरा हृदय वश में नहीं रहता। उनके पैरों की चाप सुनकर सुखदयाल के चेहरे पर रौनक आ जाती थी। उसके साथ चाचा-चाची घोर निर्दयता का व्यवहार करते थे। और भोलानाथ का उसे प्यार करना तो उन्हें और भी बुरा लगता था। प्राय. कहा करते, कैसा निर्दयी आदमी है, हमारी कन्याओं के साथ बात भी नहीं करता, ऐसी गोरी और सुन्दर हैं, जैसे मक्खन के पेड़े, देखने से भूख मिटती है, परन्तु उसको सुखदयाल के सिवा कोई पसन्द ही नहीं आता। पसन्द नहीं आता, तो न सही, परन्तु क्या यह भी नहीं हो सकता कि कभी-कभी उनके हाथ पर दो पैसे ही रख दे, जिससे सुखदयाल के साथ उसका व्यवहार देखकर उनका हृदय न मुरझा जाय, पर यह बातें भोलानाथ के सामने कहने का उन्हें साहस न होता था। हाँ, उसका क्रोध बेचारे सुखदयाल पर उतरता था, जल नीचे की ओर बहता है। परिणाम यह हुआ कि सुखदयाल सदैव उदास रहने लगा। उसका मुख कमल मुरझा गया। प्रेम, जीवन की धूप है, वह उसे प्राप्त न था। जब कभी भोलानाथ आता, तब उसे पितृ प्रेम के सुख का अनुभव होने लगता था।

लोहड़ी का दिन था, साँझ का समय। बालकराम के द्वार पर पुरुषों की भीड़ थी, आँगन में स्त्रियों का जमघट। कोई गाती थीं, कोई हँसती थीं, कोई अग्नि में चावल फेंकती थीं, कोई चिड़वे खाती थीं। तीन कन्याओं के पश्चात् परमात्मा ने पुत्र दिया था। यह उसकी पहली लोहड़ी थी। बालकराम और उसकी स्त्री दोनों आनन्द से प्रफुल्लित थे। बड़े समारोह से त्यौहार मनाया जा रहा था। दस रुपये की मक्की उड़ गई, चिड़वे और रेवड़ी इसके

अतिरिक्त, परन्तु सुखदयाल की ओर किसी का भी ध्यान न था। वह पर से बाहर दीवार के साथ खड़ा लोगों की ओर लुब्ध दृष्टि से देख रहा था कि एकाएक भोलानाथ ने उसके कन्धों पर हाथ रखकर कहा—सुखू!

सूखे धानों में पानी पड़ गया। सुखदयाल ने पुलकित होकर उत्तर दिया—चाचा!

'आज लोहड़ी है, तुम्हारी ताई ने तुम्हें क्या दिया?'

'मक्की।'

'और क्या दिया?'

'और कुछ नहीं।'

'और तुम्हारी बहनों को?'

'मिठाई भी दी, पतासे भी दिये, पैसे भी दिये।'

भोलानाथ के नेत्रों में जल भर आया। भर्राये हुए स्वर से बोले—हमारे घर चलोगे?

'चलूँगा।'

'कुछ खाओगे?'

'हाँ खाऊँगा।'

घर पहुँचकर भोलानाथ ने पत्नी से कहा—इसे कुछ खाने को दो। भोलानाथ की तरह उनकी पत्नी भी सुखदयाल से बहुत प्यार करती थी। उसने बहुत सी मिठाई उसके सम्मुख रख दी। सुखदयाल रुचि से खाने लगा। जब खा चुका, तो चलने को तैयार हुआ। भोलानाथ ने कहा—ठहरो, इतनी जल्दी काहे की है।

'ताई मारेगी।'

'क्यों मारेगी?'

'कहेगी, तू चाचा के घर क्यों था?'

'तेरी बहनों को भी मार पड़ती है?'

'नहीं, उन्हें प्यार करती है।'

भोलानाथ की स्त्री के नेत्र भर आये। भोलानाथ बोले—जो मिठाई बची है, वह जेब में डाल ले।

सुखदयाल ने तृषित नेत्रों से मिठाई की ओर देखा और उत्तर दिया—न।

'क्यों ?'

'ताई मारेगी और मिठाई छीन लेगी।'

'पहले भी कभी मारा है ?'

'हाँ, मारा है।'

'कितनी बार मारा है ?'

'कई बार मारा है।'

'किस तरह मारा है ?'

'चिमटे से मारा है।'

भोलानाथ के हृदय पर जैसे किसी ने हथौड़ा मार दिया। उन्होंने ठण्डी साँस भरी और चुप हो गये। सुखदयाल धीरे धीरे अपने घर की ओर रवाना हुआ, परन्तु उसकी बातें ताई के कानों तक उससे पहले जा पहुँची थीं। उसके क्रोध की कोई थाह नहीं थी। जब रात्रि अधिक चली गई और गली मुहल्ले की स्त्रियाँ अपने अपने घर चली गइ, तो उसने सुखदयाल को पकड़ कर कहा—क्यों वे कलमुँहे, चाचा से क्या कहता था ?

सुखदयाल का कलेजा काँप गया। डरते डरते बोला—कुछ नहीं कहता था।

'तू तो कहता था, ताई मुझे चिमटे से मारती है।'

बालकराम पास खड़ा था, आश्चर्य से बोला—अच्छा, अब यह छोकरा हमारी मिट्टी उड़ाने पर उतर आया है।

सुखदयाल ने आँखों ही आँखों ताऊ की ओर देखकर प्रार्थना की कि मुझे इस निर्दयी से बचाओ, परन्तु वहाँ क्रोध बैठा था। आशा ने निराशा का रूप धारण कर लिया। ताई ने कर्कश स्वर से डाँटकर पूछा—

'क्यों, बोलता क्यों नहीं ?'

'अब न कहूँगा।'

'अब न कहूँगा। न मरता है, न पीछा छोड़ता है। खाने को देते जाओ, जैसे इसके बाप की जागीर पड़ी है।'

यह कहकर उसने पास खड़ा हुआ वेलना उठाया। उसे देखकर सुख

दयाल बिलबिला उठा, परन्तु अभी उसके शरीर पर पड़ा न था कि उसकी लड़की दौड़ती हुई आई और कहने लगी—चाचा आया है।

(६)

सुखदेवी का हृदय काँप गया। वह बैठी थी, खड़ी हो गई और बोली—कौन सा चाचा? गुजरातवाला?

'नहीं पालू'

सुखदेवी और बालकराम दोनों स्तम्भित रह गये। जिस प्रकार बिल्ली को सामने देखकर कबूतर सहम जाता है, उसी प्रकार दोनों सहम गये। आज से दो वर्ष पहले जब पालू साधू बनने के लिए विदा होने आया था, तब सुखदेवी मन में प्रसन्न हुई थी, परन्तु उसने प्रकट ऐसा किया था, मानों उसका हृदय इस समाचार से टुकड़े टुकड़े हो गया है। इस समय उसके मन में भय और व्याकुलता थी, परन्तु मुख पर प्रसन्नता की झलक थी। वह जल्दी से बाहर निकली और बोली—पालू।

परन्तु वहाँ पालू के स्थान में एक साधु महात्मा खड़े थे, जिनके मुख-मण्डल से तेज की किरणें फूट फूटकर निकल रही थीं। सुखदेवी के मन को धीरज हुआ, परन्तु एकाएक ख़याल आया, यह तो वही है, वही मुँह, वही आँखें, वही रङ्ग, वही रूप, परन्तु कितना परिवर्त्तन हो गया है। सुखदेवी ने मुस्कराकर कहा—स्वामीजी, नमस्कार करती हूँ।

इतने में बालकराम अन्दर से निकला और रोता हुआ स्वामीजी से लिपट गया। स्वामीजी भी रोने लगे, परन्तु यह रोना दुःख का नहीं, आनन्द का था। जब हृदय कुछ स्थिर हुआ तो बोला—भाई, तनिक बाल-बच्चों को तो बुलाओ। देखने को जी तरस गया।

सुखदेवी अन्दर को चली, परन्तु पाँव मन मन के भारी हो गये। सोचती थी—यदि बालक सो गये होते, तो कैसा अच्छा होता। सब बातें ढँकी रहतीं। अब क्या करूँ, इस बदमाश सुक्खू के वस्त्र इतने मैले हैं कि सामने करने का साहस नहीं पड़ता। आँखें कैसे मिलाऊँगी। रङ्ग में भङ्ग डालने के लिए इसे आज ही आना था। दो वर्ष बाद आया है। इतना भी न हुआ कि पहले पत्र ही लिख देता।

इतने में स्वामी विद्यानन्द अन्दर आ गये। पितृ-वात्सल्य ने लज्जा को दबा लिया था; परन्तु सुखदयाल और भतीजों के वस्त्र तथा उनके रूप रङ्ग को देखा, तो खड़े के खड़े रह गये। भतीजियाँ ऐसी थीं, जैसे चमेली के फूल और सुक्खू, वही सुक्खू जो कभी मैना के समान चहकता फिरता था, जिसकी बातें सुनने के लिए राह जाते लोग खड़े हो जाते थे, जिसकी नटखटी बातों पर प्यार आता था, अब उदासीनता की मूर्ति बना हुआ था। उसका मुँह इस प्रकार कुम्हलाया हुआ था, जिस प्रकार जल न मिलने से वृक्ष कुम्हला जाता है। इसके बाल रूखे थे, और मुँह पर दारिद्र्य बरसता था। उसके वस्त्र मैले कुचैले थे, जैसे किसी भिखारी का लड़का हो। स्वामी विद्यानन्द के नेत्रों में आँसू आ गये। सुखदेवी और बालकराम पर घड़ों पानी पड़ गया, खिसियाने से होकर बोले—कैसा शरारती है, दिन रात धूल में खेलता है।

स्वामी विद्यानन्द सब कुछ समझ गये, परन्तु उन्होंने कुछ प्रकट नहीं किया और बोले—मैं आज अपने पुराने कमरे में सोऊँगा, एक चारपाई डलवा दो।

रात्रि का समय था। स्वामी विद्यानन्द सुक्खू को लिये हुए अपने कमरे में पहुँचे। पुरानी बातें ज्यों की त्यों याद आ गईं। यही कमरा था, जहाँ प्रेम के पाँसे खेले थे। यहीं पर प्रेम के प्याले पिये थे, इसी स्थान पर बैठकर प्रेम का पाठ पढ़ा था। यही वाटिका थी, जिसमें प्रेम पवन के मस्त झोंके चलते थे। कैसा आनन्द था, विचित्र काल था, अद्भुत वसन्त ऋतु थी, जिसने शिशिर के झोंके कभी देखे ही न थे। आज वह वाटिका उजड़ चुकी थी, प्रेम का राज्य लुट चुका था। स्वामी विद्यानन्द के हृदय में हलचल मच गई।

परन्तु सुक्खू का मुख इस प्रकार चमकता था, जैसे ग्रहण के पश्चात् चन्द्रमा। उसे देखकर स्वामी विद्यानन्द ने सोचा—मैं कैसा मूर्ख हूँ, ताऊ और ताई जब इस पर सख्ती करते होंगे, जब अकारण इसको मारते-पीटते होंगे; जब इसके सामने अपनी कन्याओं से प्यार करते होंगे, उस समय यह क्या कहता होगा, इसके हृदय में क्या विचार उठते होंगे ?- यही कि मेरा पिता नहीं है, वह मर गया, नहीं तो मैं इस दशा में क्यों रहता। यह फूल था जो आज धूल में मिला हुआ है। इसके हृदय में धड़कन है, नेत्रों में प्यास

है, मुख पर उदासीनता है। वह चञ्चलता जो बच्चों का विशेष गुण है, इसमें नाम को नहीं। वह हठ जो बालकों की सुन्दरता है, इससे विदा हो चुकी है। यह बाल्यावस्था ही में वृद्धों की नाईं गम्भीर बन गया है। इस अनर्थ का उत्तरदायित्व मेरे सिर है, जो इसे यहाँ छोड़ गया, नहीं तो इस दशा को क्यों पहुँचाता। इन्हीं विचारों में झपकी आ गई, तो क्या देखते हैं कि वही हृषीकेश का पर्वत है, वही कन्दरा। उसमें देवी की मूर्ति है और वे उसके सम्मुख खड़े रो रोकर कह रहे हैं—माता, दो वर्ष व्यतीत हो गये, अभी तक शान्ति नहीं मिली। क्या यह जीवन रोने ही में बीत जायगा?

एकाएक ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पत्थर की मूर्त्ति के होंठ हिलते हैं। स्वामी विधानन्द ने अपने कान उधर लगा दिये। आवाज आई—तू क्या माँगता है, यश?

'नहीं, मुझे उसकी आवश्यकता नहीं।'

'तो फिर जगत् दिखावा क्यों करता है?'

'मुझे शान्ति चाहिए।'

'शान्ति के लिए सेवा मार्ग की आवश्यकता है। पर्वत छोड़ और नगर में जा। जहाँ दुखी जन रहते हैं, उनके दुख दूर कर। किसी के घाव पर फाहा रख, किसी के टूटे हुए मन को धीरज बँधा, परन्तु यह रास्ता भी तेरे लिए उपयुक्त नहीं। तेरा पुत्र है, तू उसकी सेवा कर। तेरे मन को शान्ति प्राप्त होगी।'

यह सुनते ही स्वामीजी के नेत्रों से पर्दा हट गया। जागे तो वास्तविक भेद उनपर खुल चुका था कि मन की शान्ति कर्त्तव्य के पालन से मिलती है। उन्होंने सुखदयाल को ज़ोर से गले लगाया और उसके रूखे मुँह को चूम लिया।

विश्वभरनाथ शर्मा कौशिक

आप कानपूर के निवासी हैं। आपकी कहानियाँ प्रायः हिन्दी मासिक पत्रिकाओं में निकलती रहती हैं। 'गल्प-मन्दिर' और 'चित्रशाला'—ये दो संग्रह आपकी कहानियों के प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ दिनों तक आपने 'मनोरंजन' मासिक-पत्र का बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। आपकी कहानियों में बहुधा निम्न श्रेणी के चरित्रों का चित्रण होता है। आपकी कला की विशेषता सम्भाषण है। सम्भाषणों द्वारा ही आपने कई ड्रामे लिखे हैं। आपका एक उपन्यास धारा-वाहिक रूप में 'सुधा' में निकला था, जो अब पुस्तक रूप में भी छप गया है।

'ताऊजी, हमें लेलगाड़ी (रेलगाड़ी) ला दोगे ?'—कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाहें फैलाकर कहा—हाँ बेटा, ला देंगे।

उनके इतना कहते कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमकर बोले—क्या करेगा रेलगाड़ी?

बालक बोला—उसमें बैठकर बली दूल जायँगे। हम भी जायँगे, चुन्नी को भी ले जायँगे। बाबूजी को नहीं ले जायँगे। हमें लेलगाली नहीं ला देते। ताऊजी तुम ला दोगे तो तुम्हें ले जायँगे।

बाबू—और किसको ले जायगा?

बालक दम भर सोचकर बोला—बछ, औल किसी को नहीं ले जायँगे।

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धांगनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—और अपनी ताई को नहीं ले जायगा?

बालक कुछ देर अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताईजी उस समय कुछ चिढ़ी हुई सी बैठी थीं। बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—ताई को नहीं ले जायँगे।

ताईजी सुपारी काटती हुई बोलीं—अपने ताऊजी ही को ले जा। मेरे ऊपर दया रख!

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरत ताड़ गया। बाबू साहब ने फिर पूछा—ताई को क्यों नहीं ले जायगा?

बालक—ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं कलतीं।

बाबू—जो प्यार करें, तो ले जायगा?

बालक को इसमें कुछ सन्देह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—क्यों रे, बोलता नहीं ? ताई प्यार करें, तो रेल पर बिठाकर ले जायगा ?

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया, परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धांगिनीजी के पास ले जाकर उनसे बोले—लो, इसे प्यार कर लो, तो यह तुम्हें भी ले जायगा। परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की यह चुहलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनककर बोलीं—तुम्हीं रेल पर बैठकर जाओ, मुझे नहीं जाना है।

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले—प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेल में नहीं बिठावेगा।—क्यों रे मनोहर ?

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर में चोट नहीं लगी, पर हृदय में चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया, चुमकार-पुचकारकर चुप किया, और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला देने का वचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भय पूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है ? बच्चे को ढकेल दिया ! जो उसके चोट लग जाती, तो ?

रामेश्वरी मुँह मटकाकर बोलीं—लग जाती, तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लाद देते थे ? आप ही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे, और आप ही अब ऐसी बातें करते हैं।

बाबू साहब कुढ़कर बोले—इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं ?

रामेश्वरी—और नहीं किसे कहते हैं ? तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुःख-सुख सूझता ही नहीं। न जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हें इन बातों की कोई परवा ही नहीं, अपनी चुहल से काम है।

बाबू—बच्चों की प्यारी प्यारी बातें सुनकर तो चाहे जैसा जी हो, प्रसन्न हो जाता है, मगर तुम्हारा हृदय न-जाने किस धातु का बना हुआ है!

रामेश्वरी—तुम्हारा हो जाता होगा। और होने को होता भी है, मगर वैसा बच्चा भी तो हो! पराये धन से भी कहीं घर भरता है।

बाबू साहब कुछ देर चुप रहकर बोले—यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे।

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोली—बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो, पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं! नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते! तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी सन्तान के लिए न जाने क्या-क्या करते हैं—पूजा पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातों से क्या काम! रात दिन भाई-भतीजों में मगन रहते हो।

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा—पूजा, पाठ, व्रत, सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग में नहीं, वह पूजा पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।

श्रीमतीजी कुछ कुछ रुँआसे स्वर में बोलीं—इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रखा है! ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायँ, तो काम कैसे चले। सब विश्वास पर ही बैठे रहें, आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे।

बाबू साहब ने सोचा, कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं, अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गये।

(२)

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन देन भी है। इनके एक छोटा भाई भी है। उसका नाम है कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु ३५ वर्ष के लगभग है, और छोटे भाई कृष्णदास की २१ के लगभग। रामजीदास निस्सन्तान हैं। कृष्णदास के दो सन्तानें हैं। एक पुत्र—वही पुत्र, जिससे

पाठक परिचित हो चुके हैं—और एक कन्या है। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तान हीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाई की सन्तान को वे अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तानहीनता का बड़ा दुःख है। वह दिन रात सन्तान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्वरी, हथेली पर सिर रखे, किसी चिन्ता में डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठकर अपनी मा के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा—आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह से ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है। कभी कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।

रामेश्वरी बोलीं—तुम्हीं ने मुझे ऐसा बना रखा है। उस दिन उस पण्डित ने कहा था कि हम दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान का जोग है, और उपाय करने से सन्तान हो भी सकती है। उसने उपाय भी बताये थे, पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना न होना तो भगवान् के अधीन है।

बाबू साहब हँसकर बोले—तुम्हारी जैसी सीधी स्त्री भी क्या कहूँ, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनिया-भर के झूठे और धूर्त हैं! ये झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते हैं।

रामेश्वरी तुनककर बोलीं—तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता

है। ये पोथी पुराण भी सब झूठे हैं? पण्डित कुछ अपनी तरफ़ से तो बनाकर कहते ही नहीं हैं। शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे हैं। अँगरेजी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादे के जमाने से चली आई हैं,उन्हें भी झूठा बताते हैं।

बाबू साहब—तुम बात तो समझती नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष शास्त्र झूठा है। सम्भव है, वह सचा हो, परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो-एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?

रामेश्वरी—हूँ, सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक बड़े सचे हो। अच्छा, एक बात पूछती हूँ। भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो? परन्तु किया क्या जाय? जब नहीं है और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ? इसके सिवा जो बात अपनी सन्तान से होती, वही भाई की सन्तान से भी तो हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द उनकी बाल क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय।

रामेश्वरी कुढ़कर बोलीं—तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ। इसी से तो रात दिन जला करती हूँ। भला यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा?

बाबू साहब हँसकर बोले—अरे तुम भी कहाँ की पोच बातें लाई। नाम सन्तान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गये हैं उन सबका नाम क्या सन्तान ही की बदौ

हाथ से मुँडेर छूट गई। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मारकर छत्ते पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वह ज़ोर से चिल्ला उठतीं, और कहतीं—देखो देखो, वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो। कभी वह कहतीं—बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ, हाँ, मैं चाहती, तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।—इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करतीं।

मनोहर की टाँग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई, वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—मनोहर कैसा है?

रामजीदास ने उत्तर दिया—अच्छा है।

रामेश्वरी—उसे मेरे पास लाओ।

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बड़े प्यार से हृदय से लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गईं, अब वह मनोहर की बहन चुन्नी से भी द्वेष और घृणा नहीं करतीं। और, मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।



श्रीप्रेमचन्द

प्रेमचन्द रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ भारत के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक हैं। आप काशी के रहनेवाले थे। आपने कानपुर के उर्दू-पत्र 'ज़माना' में लेख लिखना शुरू किया। आपकी 'प्रेम-पचीसी' और 'सोज़ेवतन' यह दोनों प्रथम ज़माना ही से प्रकाशित हुईं। सन् १९१४ से आप हिन्दी में लिख रहे थे। आपके कई उपन्यास 'सेवा-सदन', 'वरदान', 'कायाकल्प', प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'प्रतिज्ञा' तथा 'ग़बन' आदि प्रसिद्ध हो चुके हैं। आपकी कहानियों के कई संग्रह निकल चुके हैं—'प्रेम-पूर्णिमा', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम प्रसून', 'प्रेम-तीर्थ', 'सप्तसरोज', 'नव निधि', 'पांच-फूल', 'मान-सरोवर', 'कफ़न' आदि। आपकी गल्पों के अनुवाद भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं में हो चुके हैं, जहां वे बहुत चाव से पढ़ी जाती हैं। कुछ गल्पों के अनुवाद विदेशी भाषाओं, जैसे जापानी, रूसी, जर्मन, डच तथा अंग्रेज़ी भाषा में भी हो चुके हैं। उर्दू, के आप सबसे बड़े कहानीकार थे।

१९३६ ई० में आपकी मृत्यु से हिन्दी-साहित्य को जो क्षति हुई उसका अनुमान नहीं किया जा सकता।

वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे बड़े, अमीर ग़रीब सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफ़ीम की पीनक ही के मज़े लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद प्रमोद का प्राधान्य था। शासन विभाग में, साहित्यक्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला कौशल में, उद्योग-धंधों में, आहार व्यवहार में सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राज कर्मचारी विषय-वासना में, कवि-गण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र, मिस्सी और उबटन का रोजगार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को ख़बर न थी। बटेर लड़ रहे हैं, तीतरों की लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है, पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रङ्क तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फ़क़ीरों को पैसे मिलते, तो वे रोटियाँ न लेकर अफ़ीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गंजीफ़ा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है। ये दलीलें ज़ोरों के साथ पेश की जाती थीं (इस सम्प्रदाय के लोगों से दुनिया अब भी ख़ाली नहीं है)। इसलिए अगर मिरज़ा सज्जादअली और मीर रोशनअली अपना अधिकांश समय बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे, तो किसी विचारशील पुरुष का क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थीं, जीविका की कोई चिन्ता न थी, घर में बैठे चखौतियाँ करते थे। आख़िर और करते ही क्या? प्रातःकाल दोनों मित्र नाश्ता करके बिसात बिछाकर बैठ जाते, मुहरे सज जाते, और लड़ाई के दाँव पेंच होने लगते। फिर ख़बर न होती थी कि कब दोपहर हुई, कब तीसरा पहर, कब शाम। घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता कि खाना तैयार है। यहाँ से जवाब मिलता—चलो, आते हैं, दस्तरख्वान बिछाओ। यहाँ तक कि

बावरची विवश होकर कमरे ही में खाना रख जाता था। और दोनों मित्र दोनों काम साथ साथ करते थे।

मिरज़ा सज्जादअली के घर में कोई बड़ा बूढ़ा न था, इसलिए उन्हीं के दीवानख़ाने में बाज़ियाँ होती थीं, मगर यह बात न थी कि मिरज़ा के घर के और लोग उनके इस व्यवहार से खुश हों। घरवालों का तो कहना ही क्या, महल्लेवाले, घर के नौकर चाकर तक नित्य द्वेषपूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे—बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। खुदा न करे, किसी को इसकी चाट पड़े, आदमी दीन दुनिया किसी के काम का नहीं रहता। न घर का, न घाट का। बुरा रोग है। यहाँ तक कि मिरज़ा की बेगम साहबा को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज खोजकर पति को लताड़ती थीं, पर उन्हें इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोती ही रहती थीं, तब तक उधर बाज़ी बिछ जाती थी। और रात को जब सो जाती थीं, तब कहीं मिरज़ाजी घर में आते थे। हाँ, नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थीं—क्या पान माँगे हैं? कह दो आकर ले जायँ। खाने की फ़ुरसत नहीं है? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो, खायें चाहे कुत्ते को खिलायें। पर रूबरू वह भी कुछ न कह सकती थीं। उनको अपने पति से उतना मलाल न था, जितना मीर साहब से। उन्होंने उनका नाम मीर बिगाड़ू रख छोड़ा था। शायद मिरज़ाजी अपनी सफ़ाई देने के लिए सारा इलजाम मीरसाहब ही के सिर थोप देते थे।

एक दिन बेगम साहबा के सिर में दर्द होने लगा। उन्होंने लौंडी से कहा—जाकर मिरज़ा साहब को बुला ला। किसी हकीम के यहाँ से दवा लावें। दौड़, जल्दी कर। लौंडी गई तो, मिरज़ाजी ने कहा—चल अभी आते हैं। बेगम साहबा का मिज़ाज गरम था। इतनी ताब कहाँ कि उनके सिर में दर्द हो, और पति शतरंज खेलता रहे। चेहरा सुर्ख हो गया। लौंडी से कहा—जाकर कह, अभी चलिए, नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जायँगी।

मिरज़ाजी बड़ी दिलचस्प बाजी खेल रहे थे, दो ही किश्तों में मीर साहब को मात हुई जाती थी। झुँझलाकर बोले—क्या ऐसे दम लबों पर है? ज़रा सब्र नहीं होता?

मीर—अरे तो जाकर सुन [redacted] आइए न। औरतें नाज़ुक मिज़ाज होती ही हैं।

मिरज़ा—जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ! दो किश्तों में आपको मात होती है।

मीर - जनाब इस भरोसे न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहें और मात हो जाय, पर जाइए सुन आइए। क्या ख़ामख़्वाह उनका दिल दुखाइएगा?

मिरज़ा—इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर—मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइए।

मिरज़ा—अरे यार, जाना पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर दर्द ख़ाक नहीं है, मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर—कुछ भी हो, उनकी ख़ातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिरज़ा—अच्छा, एक चाल और चल लूँ।

मीर—हरगिज़ नहीं। जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे में हाथ ही न लगाऊँगा।

मिरज़ा साहब मजबूर होकर अन्दर गये, तो बेगम साहबा ने त्योरियाँ बदलकर, लेकिन कराहते हुए कहा—तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है? चाहे कोई मर ही जाय, पर उठने का नाम नहीं लेते! नौज कोई तुम जैसा आदमी हो!

मिरज़ा—क्या कहूँ, मीर साहब मानते ही न थे। मुश्किल से पीछा छुड़ा कर आया हूँ।

बेगम—क्या जैसे वह ख़ुद निखट्टू हैं, वैसे ही सबको समझते हैं? उनके भी तो बाल-बच्चे हैं, या सबका सफाया कर डाला?

मिरज़ा—बड़ा लती आदमी है। जब आ जाता है, तब मजबूर होकर मुझे भी खेलना ही पड़ता है।

बेगम—दुत्कार क्यों नहीं देते?

मिरज़ा—बराबर के आदमी हैं, उम्र में, दर्जे में, मुझसे, दो अंगुल ऊँचे। मुलाहिज़ा करना ही पड़ता है।

बेगम—तो मैं ही दुत्कारे देती हूँ। नाराज़ हो जायँगे, हो जायँ। कौन

खिचो की रोटियाँ चला देता है। रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी।—हिरिया, जा, बाहर से शतरंज उठा ला। मीर साहब से कहना, मियाँ अब न खेलेंगे, आप तशरीफ़ ले जाइए।

मिरज़ा—हाँ हाँ, कहीं ऐसा ग़ज़ब भी न करना! ज़लील करना चाहती हो क्या!—ठहर हिरिया, कहाँ जाती है।

बेगम—जाने क्यों नहीं देते! मेरा ही खून पिये, जो उसे रोके। अच्छा उसे रोका, मुझे रोको तो जानूँ!

यह कहकर बेगम साहबा झल्लाई हुई दीवानख़ाने की तरफ़ चलीं। मिरज़ा बेचारे का रंग उड़ गया। बीवी की मिन्नतें करने लगे—ख़ुदा के लिए, तुम्हें हज़रत हुसेन की क़सम है। मेरी ही मैयत देखे, जो उधर जाय, लेकिन बेगम ने एक न मानी। दीवानख़ाने के द्वार तक गईं, पर एकाएक पर पुरुष के सामने आते हुए पाँव बँध से गये। भीतर झाँका। संयोग से कमरा ख़ाली था। मीर साहब ने दो एक मुहरे इधर उधर कर दिये थे, और अपनी सफ़ाई जताने के लिए बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेगम ने अन्दर पहुँचकर बाज़ी उलट दी, मुहरे कुछ तख़्त के नीचे फेंक दिये, कुछ बाहर और किवाड़े अन्दर से बन्द करके कुंडी लगा दी। मीर साहब दरवाज़े पर थे ही, मुहरे बाहर फेंके जाते देखे, चूड़ियों की झनक कान में पड़ी। फिर दरवाज़ा बन्द हुआ, तो समझ गये, बेगम साहबा बिगड़ गईं, चुपके से घर की राह ली।

मिरज़ा ने कहा—तुमने ग़ज़ब किया!

बेगम—अब मीर साहब इधर आये, तो खड़े खड़े निकलवा दूँगी। इतनी लौ ख़ुदा से लगाते, तो वली हो जाते। आप तो शतरंज खेलें, और मैं यहाँ चूल्हे चक्की की फ़िक्र में सिर खपाऊँ! ले जाते हो हकीम साहब के यहाँ कि अब भी ताम्मुल है!

मिरज़ा घर से निकले, तो हकीम के घर जाने के बदले मीर साहब के घर पहुँचे और सारा वृत्तान्त कहा। मीर साहब बोले—मैंने तो जब मुहरे बाहर आते देखे, तभी ताड़ गया। फ़ौरन भागा। बड़ी ग़ुस्सेवर मालूम होती हैं; मगर आपने उन्हें यों सिर चढ़ा रखा है, यह मुनासिब नहीं। उन्हें इससे

क्या मतलब कि आप बाहर क्या करते हैं। इन्तज़ाम करना उनका काम है, दूसरी बातों से उन्हें क्या सरोकार !

मिरज़ा—ख़ैर, यह तो बताइए, अब कहाँ जमाव होगा ?

मीर—इसका क्या ग़म है। इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है। बस, यहीं जमे।

मिरज़ा—लेकिन बेगम साहबा को कैसे मनाऊँगा ? जब घर पर बैठा रहता था, तब तो वह इतना बिगड़ती थीं, यहाँ बैठक होगी, तो शायद ज़िन्दा न छोड़ेंगी।

मीर—अजी बकने भी दीजिए, दो चार रोज़ में आप ही ठीक हो जायँगी। हाँ, आप इतना कीजिए कि आज ज़रा तन जाइए।

(२)

मीरसाहब की बेगम किसी अज्ञात कारण से मीर साहब का घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थीं, इसलिए वह उनके शतरंज प्रेम की कभी आलोचना न करती थीं, बल्कि कभी-कभी मीर साहब को देर हो जाती, तो याद दिला देती थीं। इन कारणों से मीरसाहब को भ्रम हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यन्त विनयशील और गम्भीर है, लेकिन जब दीवानख़ाने में बिसात बिछने लगी, और मीर साहब दिन भर घर में रहने लगे, तो बेगम साहबा को बड़ा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता में बाधा पड़ गई। दिन-भर दरवाज़े पर झाँकने को तरस जातीं।

उधर नौकरों में भी कानाफूसी होने लगी। अब तक दिन भर पड़े पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर में कोई आये, कोई जाय, उनसे कुछ मतलब न था। अब आठों पहर की धौंस हो गई। कभी पान लाने का हुक्म होता। कभी मिठाई का। और, हुक्का तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति जलता ही रहता था। वे बेगम साहबा से जा जाकर कहते—हुज़ूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई ! दिन भर दौड़ते दौड़ते पैरों में छाले पड़ गये। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे तो शाम कर दी ! घड़ी आध-घड़ी दिल बहलाव के लिए खेल लेना बहुत है। ख़ैर, हमें तो कोई शिकायत नहीं, हुज़ूर के ग़ुलाम हैं, जो हुक्म होगा, बजा ही लावेंगे, मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलनेवाला कभी पनपता नहीं, घर पर कोई न कोई

श्राफ़त ज़रूर आती है। यहाँ तक कि एक के पीछे महल्ले के महल्ले तबाह होते देख गये हैं। सारे महल्ले में यही चरचा होती रहती है। हुज़ूर का नमक खाते हैं, अपने आक़ा की बुराई सुन सुनकर रज होता है, मगर क्या करें। इसपर बेगम साहबा कहतीं—मैं तो खुद इसको पसन्द नहीं करती, पर वह किसी की सुनते ही नहीं, तो क्या किया जाय।

महल्ले में भी जो दो चार पुराने ज़माने के लोग थे, वे आपस में भाँति भाँति के अमङ्गल की कल्पनाएँ करने लगे—अब ख़ैरियत नहीं है। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का खुदा ही हाफ़िज़ है। यह बादशाहत शतरज के हाथों तबाह होगी। आसार बुरे हैं।

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फ़रियाद सुननेवाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिची आती थी, और वह वेश्याओं में भाँड़ों में, और विलासिता के अन्य अङ्गों की पूर्ति में उड़ जाती थी। अँगरेज कम्पनी का ऋण दिन दिन बढ़ता जाता था। कमली दिन दिन भीगकर भारी होती जाती थी। देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। रेजीडेंट बार बार चेतावनी देता था, पर यहाँ तो लोग विलासिता के नशे में चूर थे, किसी के कानों पर जूँ न रेंगती थी।

ख़ैर, मीर साहब के दीवानख़ाने में शतरज होते कई महीने गुज़र गये। नये-नये नक्शे हल किये जाते, नये नये क़िले बनाये जाते, नित्य नयी व्यूह-रचना होती, कभी कभी खेलते खेलते झौड़ हो जाती, तू-तू मैं मैं तक की नौबत आ जाती, पर शीघ्र ही दोनों मित्रों में मेल हो जाता। कभी कभी ऐसा भी होता, कि बाजी उठा दी जाती, मिरज़ाजी रूठकर अपने घर चले आते। मीर साहब अपने घर में जा बैठते, पर रात भर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शान्त हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानख़ाने में आ पहुँचते थे।

एक दिन दोनों मित्र बैठे हुए शतरञ्ज के दल दल में गोते खा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फ़ौज का अफ़सर मीरसाहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीर साहब के होश उड़ गये। यह क्या बला

सिर पर आई! यह तलबी किस लिए हुई है! अब ख़ैरियत नहीं नजर आती! घर के दरवाजे बन्द कर लिये। नौकरों से बोले—कह दो, घर में नहीं हैं।

सवार—घर में नहीं, तो कहाँ हैं!

नौकर—यह मैं नहीं जानता। क्या काम है?

सवार—काम तुझे क्या बतलाऊँ? हुजूर में तलबी हैं—शायद फ़ौज के लिए कुछ सिपाही माँगे गये हैं। जागीरदार हैं कि दिल्लगी! मोरचे पर जाना पड़ेगा, तो आटे दाल का भाव मालूम हो जायगा!

नौकर—अच्छा, तो जाइए, कह दिया जायगा।

सवार—कहने की बात नहीं है! मैं कल खुद आऊँगा, साथ ले आने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीर साहब की आत्मा काँप उठी! मिरजाजी से बोले—कहिए जनाब, अब क्या होगा?

मिरजा—बड़ी मुसीबत है, कहीं मेरी तलबी भी न हो।

मीर—कम्बख़्त कल फिर आने को कह गया है।

मिरज़ा—आफत है और क्या! कहीं मोरचे पर जाना पड़ा तो बे मौत मरे।

मीर—बस, यही एक तदबीर है कि घर पर मिलो ही नहीं। कल से गोमती पर कहीं वीराने में नक्शा जमे। वहाँ किसे ख़बर होगी। हज़रत आकर आप लौट जायँगे।

मिरज़ा—वल्लाह, आपको खूब सूझी! इसके सिवा और कोई तदबीर ही नहीं है।

इधर मीर साहब की बेगम उस सवार से कह रही थीं, तुमने खूब धता बताई। उसने जवाब दिया—ऐसे गावदियों को तो चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अक्ल और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली। अब भूलकर भी घर पर न रहेंगे।

(२)

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुँह अँधेरे घर से निकल खड़े होते। बग़ल में एक छोटी सी दरी दबाये, डिब्बे में गिलौरियाँ भरे, गोमतीपार की एक पुरानी वीरान मसजिद में चले जाते, जिसे शायद नवाब आसफ़उद्दौला ने बनवाया था। रास्ते में तम्बाकू, चिलम और मदरिया ले लेते और मसजिद में पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भरकर शतरंज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हें दीन दुनिया की फ़िक्र न रहती थी। किश्त, शह आदि दो एक शब्दों के सिवा उनके मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होता होगा। दोपहर को जब भूख मालूम होती, तो दोनों मित्र किसी नानबाई की दूकान पर जाकर खाना खा आते, और एक चिलम हुक्का पीकर फिर संग्राम क्षेत्र में डट जाते। कभी कभी तो उन्हें भोजन का भी ख़याल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कम्पनी की फ़ौजें लखनऊ की तरफ़ बढ़ी चली आती थीं। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल बच्चों को ले-लेकर देहातों में भाग रहे थे, पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी ज़रा भी फ़िक्र न थी। वे घर से आते, तो गलियों में होकर। डर था, कि कहीं, किसी बादशाही मुलाज़िम की निगाह न पड़ जाय, जो बेगार में पकड़ जायँ। हज़ारों रुपये सालाना की जागीर मुफ़्त ही में हजम करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसजिद के खँडहर में बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। मिरज़ा की बाजी कुछ कमज़ोर थी। मीर साहब उन्हें किश्त पर किश्त दे रहे थे। इतने में कम्पनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिये। यह गोरों की फ़ौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिए आ रही थी।

मीरसाहब बोले—अँगरेज़ी फ़ौज आ रही है, ख़ुदा ख़ैर करे।

मिरज़ा—आने दीजिए, किश्त बचाइए। यह किश्त!

मीर—ज़रा देखना चाहिए, यहीं आड़ में खड़े हो जायँ।

मिरज़ा—देख लीजिएगा, जल्दी क्या है, किश्त!

मीर—तोपख़ाना भी है। कोई पाँच हजार आदमी होंगे। कैसे कैसे जवान हैं! लाल बन्दरों के से मुँह। सूरत देखकर ख़ौफ मालूम होता है।

मिरज़ा—जनाब, हीले न कीजिए। ये चकमे किसी और को दीजिएगा, यह किश्त!

मीर—आप भी अजीब आदमी हैं। यहाँ तो शहर पर आफ़त आई हुई है, और आपको किश्त की सूझी है! कुछ इसकी भी ख़बर है, कि शहर घिर गया, तो घर कैसे चलेंगे?

मिरज़ा—जब घर चलने का वक्त आयेगा, तो देखी जायगी—यह किश्त! बस, अबकी शह में मात है।

फौज निकल गई। दस बजे का समय था? फिर बाज़ी बिछ गई।

मिरज़ा बोले—आज खाने की कैसे ठहरेगी?

मीर—अजी, आज तो रोज़ा है। क्या आपको ज्यादा भूख मालूम होती है?

मिरज़ा—जी नहीं। शहर में न जाने क्या हो रहा है।

मीर—शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खाकर आराम से सो रहे होंगे। हुज़ूर नवाबसाहब भी ऐशगाह में होंगे।

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे, तो तीन बज गये। अबकी मिरज़ाजी की बाज़ी कमजोर थी। चार का गजर बज ही रहा था कि फ़ौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली पकड़ लिये गये थे, और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिये जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार काट। एक बूँद भी ख़ून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से, इस तरह ख़ून बहे बिना, न हुई होगी। यह वह अहिंसा न थी, जिसपर देवगण प्रसन्न होते हैं, यह वह कायरपन था, जिसपर बड़े से बड़े कायर भी आँसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नवाब बन्दी बना चला जाता था, और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की चरम सीमा थी।

मिरज़ा ने कहा—हुज़ूर नवाबसाहब को ज़ालिमों ने क़ैद कर लिया है।

मीर—होगा, यह लीजिए शह!

मिरज़ा—जनाब, ज़रा ठहरिए। इस वक्त इधर तबियत नहीं लगती। बेचारे नवाबसाहब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होंगे।

मीर—रोया ही चाहें। यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा—यह किश्त!

मिरज़ा—किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दनाक हालत है।

मीर—हाँ सो तो है ही—यह लो फिर किश्त! बस, अबकी किश्त में मात है, बच नहीं सकते।

मिरज़ा—खुदा की कसम, आप बड़े बेदर्द हैं। इतना बड़ा हादसा देख कर भी आपको दुःख नहीं होता। हाय, ग़रीब वाजिदअली शाह!

मीर—पहले अपने बादशाह को तो बचाइए, फिर नवाबसाहब का मातम कीजिएगा। यह किश्त और मात! लाना हाथ!

बादशाह को लिये हुए सेना सामने से निकल गई। उनके जाते ही मिरज़ा ने फिर बाज़ी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा—आइए, नवाबसाहब के मातम में एक मरसिया कह डालें, लेकिन मिरज़ा की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे।

(४)

शाम हो गई। खँडहर में चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबाबीलें आ आकर अपने-अपने घोंसलों में चिमटीं। पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे, मानो दो खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों। मिरज़ाजी तीन बाज़ियाँ लगातार हार चुके थे, इस चौथी बाज़ी का रंग भी अच्छा न था। वह बार बार जीतने का दृढ़ निश्चय करके सँभालकर खेलते थे, लेकिन एक न एक चाल ऐसी बेढब आ पड़ती थी, जिससे बाज़ी ख़राब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और भी उग्र हो जाती थी। उधर मीरसाहब मारे उमंग के ग़ज़लें गाते थे, चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गये हों। मिरज़ाजी सुन सुनकर झुँझलाते और हार की झेंप मिटाने के लिए उनकी दाद देते थे। पर ज्यों-ज्यों बाज़ी कमज़ोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकला जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुँझलाने लगे—जनाब, आप चाल न बदला कीजिए। यह क्या कि एक चाल चले, और

फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना हो, एक बार चल लीजिए। यह आप मुहरे पर हाथ क्यों रखे रहते हैं? मुहरे को छोड़ दीजिए, जब तक आपको चाल न सूझे, छूइए ही नहीं। आप एक-एक चाल आध-आध घंटे में चलते हैं। इसकी सनद नहीं। जिसे एक चाल चलने में पाँच मिनट से ज्यादा लगे, उसको मात समझी जाय। फिर आपने चाल बदली! चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिए।

मीर साहब का फ़रजी पिटता था। बोले—मैंने चाल चली ही कब थी।

मिरज़ा—आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजिए—उसी घर में।

मीर—उस घर में क्यों रखूँ? मैंने हाथ से मुहरा छोड़ा ही कब था?

मिरज़ा—मुहरा आप क़यामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी? फरज़ी पिटते देखा, तो धाँधली करने लगे?

मीर—धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तक़दीर से होती है, धाँधली करने से कोई नहीं जीतता?

मिरज़ा—तो इस बाज़ी में आपको मात हो गई।

मीर—मुझे क्यों मात होने लगी?

मिरज़ा—तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए, जहाँ पहले रखा था।

मीर—वहाँ क्यों रखूँ? नहीं रखता!

मिरज़ा—क्यों न रखिएगा? आपको रखना होगा।

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता था, न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगी। मिरज़ा बोले—किसी ने ख़ानदान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके क़ायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किये, आप शतरंज क्या खेलिएगा। रियासत और ही चीज है। जागीर मिल जाने से ही कोई रईस नहीं हो जाता।

मीर—क्या! घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे। यहाँ तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आ रहे हैं।

मिरज़ा—अजी, जाइए भी, ग़ाजिउद्दीन हैदर के यहाँ बावरची का काम

करते करते उम्र गुज़र गई, आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं है।

मीर—क्यों अपने बुज़ुर्गों के मुँह में कालिख लगाते हो—वे ही बावरची का काम करते होंगे। यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख़्वान पर खाना खाते चले आये हैं।

मिरज़ा—अरे चल चरकटे, बहुत बढ़-बढ़कर बातें न कर।

मीर—ज़बान सँभालिए, वरना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँखें दिखाईं कि उसकी आँखें निकालीं। है हौसला?

मिरज़ा—आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर आइए, आज दो-दो हाथ हो जायँ, इधर या उधर।

मीर—तो यहाँ तुमसे दबनेवाला कौन है?

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी ज़माना था, सभी तलवार, पेशक़ब्ज़, कटार वग़ैरह बाँधते थे। दोनों विलासी थे, पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अध पतन हो गया था—बादशाह के लिए, बादशाहत के लिए क्यों मरें, पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ने पैंतरे बदले, तलवारें चमकीं, छपाछप की आवाज़ें आईं। दोनों ज़ख्म खाकर गिरे, और दोनों ने वहीं तड़प तड़पकर जानें दे दीं। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखों से एक बूँद आँसू न निकला, उन्हीं दोनों प्राणियों ने शतरंज के वज़ीर की रक्षा में प्राण दे दिये।

अँधेरा हो चला था। बाज़ी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे हुए मानों इन वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।

चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। खँडहर की टूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें और धूल-धूसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।

———

नशा

ईश्वरी एक बड़े ज़मींदार का लड़का था और मैं एक ग़रीब क्लर्क का, जिसके पास मेहनत मजूरी के सिवा और कोई जायदाद न थी। हम दोनों में परस्पर बहसें होती रहती थीं। मैं ज़मींदारों की बुराई करता, उन्हें हिंसक पशु और ख़ून चूसनेवाली जोंक और वृक्षों की चोटी पर फूलनेवाला बँझा कहता। वह ज़मींदारों का पक्ष लेता, पर स्वभावत उसका पहलू कुछ कमज़ोर होता था, क्योंकि उसके पास ज़मींदारों के अनुकूल कोई दलील न थी। यह कहना कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते, छोटे बड़े हमेशा होते रहे हैं और होते रहेंगे, लचर दलील थी। किसी मानुषीय या नैतिक नियम से इस व्यवस्था का औचित्य सिद्ध करना कठिन था। मैं इस वाद-विवाद की गर्मा-गर्मी में अक्सर तेज़ हो जाता और लगनेवाली बातें कह जाता, लेकिन ईश्वरी हारकर भी मुस्कराता रहता था। मैंने उसे कभी गर्म होते नहीं देखा। शायद इसका कारण यह था कि वह अपने पक्ष की कमज़ोरी को समझता था। नौकरों से वह सीधे मुँह बात न करता था। अमीरों में जो एक बेदर्दी और उद्दण्डता होती है, इसमें उसे भी प्रचुर भाग मिला था। नौकर ने बिस्तर लगाने में ज़रा भी देर की, दूध ज़रूरत से ज्यादा गर्म या ठण्डा हुआ, साइकिल अच्छी तरह साफ नहीं हुई, तो वह आपे से बाहर हो जाता। सुस्ती या बदतमीज़ी उसे ज़रा भी बर्दाश्त न थी, पर दोस्तों से और विशेषकर मुझसे उसका व्यवहार सौहार्द और नम्रता से भरा होता था। शायद उसकी जगह मैं होता, तो मुझमें भी वही कठोरताएँ पैदा हो जातीं, जो उसमें थीं; क्योंकि मेरा लोक प्रेम सिद्धान्तों पर नहीं, निजी दशाओं पर टिका हुआ था। लेकिन वह मेरी जगह होकर भी शायद अमीर ही रहता, क्योंकि वह प्रकृति से ही विलासी और ऐश्वर्यप्रिय था।

अबकी दशहरे की छुट्टियों में मैंने निश्चय किया कि घर न जाऊँगा। मेरे पास किराये के लिए रुपये न थे और न मैं घरवालों को तकलीफ़ देना चाहता

था। मैं जानता हूँ, वे मुझे जो कुछ देते हैं वह उनकी हैसियत से बहुत ज्यादा है। इसके साथ ही परीक्षा का भी ख़याल था। अभी बहुत-कुछ पढ़ना बाक़ी था और घर जाकर कौन पढ़ता है। बोर्डिंगहाउस में भूत की तरह अकेले पड़े रहने को भी जी न चाहता था। इसलिए जब ईश्वरी ने मुझे अपने घर चलने का नेवता दिया, तो मैं बिना आग्रह के ही राजी हो गया। ईश्वरी के साथ परीक्षा की तैयारी खूब हो जायगी। वह अमीर होकर भी मेहनती और ज़हीन है।

उसने इसके साथ ही कहा—लेकिन भाई, एक बात का ख़याल रखना। वहाँ अगर ज़मींदारों की निन्दा की तो मुआमला बिगड़ जायगा और मेरे घरवालों को बुरा लगेगा। वह लोग तो असामियों पर इसी दावे से शासन करते हैं कि ईश्वर ने असामियों को उनकी सेवा के लिए ही पैदा किया है। असामी भी यही समझता है। अगर उसे सुझा दिया जाय कि ज़मींदार और असामी में कोई मौलिक भेद नहीं है, तो ज़मींदारों का कहीं पता न लगे।

मैंने कहा—तो क्या तुम समझते हो कि मैं वहाँ जाकर कुछ और हो जाऊँगा?

'हाँ, मैं तो यही समझता हूँ।'

'तो तुम ग़लत समझते हो।'

ईश्वरी ने इसका कोई जवाब न दिया। कदाचित् उसने इस मुआमले को मेरे विवेक पर छोड़ दिया और बहुत अच्छा किया। अगर वह अपनी बात पर अड़ता, तो मैं भी ज़िद पकड़ लेता।

(२)

सेकेंड क्लास तो क्या, मैंने कभी इंटर क्लास में भी सफ़र न किया था। अब की सेकेंड क्लास में सफ़र करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गाड़ी तो नौ बजे रात को आती थी, पर यात्रा के हर्ष में हम शाम को ही स्टेशन जा पहुँचे। कुछ देर इधर-उधर सैर करने के बाद रिफ्रेशमेंट-रूम में जाकर हम लोगों ने भोजन किया। मेरी वेष-भूषा और रङ्ग ढङ्ग से पारखी खानसामाओं को यह पहचानने में देर न लगी कि मालिक कौन है और पिछ्लग्गू कौन, लेकिन न जाने क्यों मुझे उनकी गुस्ताख़ी बुरी लग रही थी।

पैसे ईश्वरी के जेब से गये। शायद मेरे पिता को जो वेतन मिलता है, उससे ज्यादा इन खानसामाओं को इनाम इकराम में मिल जाता हो। एक अठन्नी तो चलते समय ईश्वरी ही ने दी। फिर भी मैं उन सभों से उसी तत्परता और विनय की प्रतीक्षा करता था, जिससे वे ईश्वरी की सेवा कर रहे थे? क्यों ईश्वरी के हुक्म पर सब-के सब दौड़ते हैं, लेकिन मैं कोई चीज मांगता हूँ तो उतना उत्साह नहीं दिखाते? मुझे भोजन में कुछ स्वाद न मिला। यह भेद मेरे ध्यान को सम्पूर्ण रूप से अपनी ओर खींचे हुए था।

गाड़ी आई, हम दोनों सवार हुए। खानसामाओं ने ईश्वरी को सलाम किया। मेरी ओर देखा भी नहीं।

ईश्वरी ने कहा—कितने तमीजदार हैं ये सब। एक हमारे नौकर हैं कि कोई काम करने का ढङ्ग नहीं।

मैंने खट्टे मन से कहा–इसी तरह अगर तुम अपने नौकरों को भी आठ आने रोज इनाम दिया करो तो शायद इससे ज्यादा तमीजदार हो जायँ।

'तो क्या तुम समझते हो, यह सब केवल इनाम के लालच से इतना अदब करते हैं?'

'जी नहीं, कदापि नहीं। तमीज और अदब तो इनके रक्त में मिल गया है।'

गाड़ी चली। डाक थी। प्रयाग से चली तो प्रतापगढ़ जाकर रुकी। एक आदमी ने हमारा कमरा खोला। मैं तुरन्त चिल्ला उठा—दूसरा दरजा है–सेकेण्ड क्लास है।

उस मुसाफिर ने डब्बे के अन्दर आकर मेरी ओर एक विचित्र उपेक्षा की दृष्टि से देखकर कहा—जी हाँ, सेवक भी इतना समझता है, और बीच वाले बर्थ पर बैठ गया। मुझे कितनी लज्जा आई, कह नहीं सकता।

भोर होते-होते हम लोग मुरादाबाद पहुँचे। स्टेशन पर कई आदमी हमारा स्वागत करने के लिए खड़े थे। दो भद्र पुरुष थे। पाँच बेगार। बेगारों ने हमारा लगेज उठाया। दोनों भद्र पुरुष पीछे-पीछे चले। एक मुसलमान था, रियासतअली, दूसरा ब्राह्मण था, रामहरख। दोनों ने मेरी ओर अपरिचित नेत्रों से देखा, मानों कह रहे हों तुम कौवे होकर हंस के साथ कैसे?,

रियासतअली ने ईश्वरी से पूछा—यह बाबू साहब क्या आपके साथ पढ़ते हैं ?

ईश्वरी ने जवाब दिया—हाँ, साथ पढ़ते भी हैं, और साथ रहते भी हैं। यों कहिए कि आप ही की बदौलत मैं इलाहाबाद पड़ा हुआ हूँ, नहीं कब का लखनऊ चला आया होता। अबकी मैं इन्हें घसीट लाया। इनके घर से कई तार आ चुके थे, मगर मैंने इन्कारी जवाब दिलवा दिये। आखिरी तार तो अर्जेंट था, जिसकी फीस चार आने प्रतिशब्द है, पर यहाँ से भी उसका जवाब इन्कारी ही गया।

दोनों सज्जनों ने मेरी ओर चकित नेत्रों से देखा। आतङ्कित हो जाने की चेष्टा करते हुए जान पड़े।

रियासतअली ने अर्द्ध शंका के स्वर में कहा—लेकिन आप बड़े सादे लिबास में रहते हैं।

ईश्वरी ने शंका निवारण की—महात्मा गाँधी के भक्त हैं साहब! खद्दर के सिवा कुछ पहनते नहीं, पुराने सारे कपड़े जला डाले! यों कहो कि राजा हैं! ढाई लाख सालाना की रियासत है, पर आपकी सूरत देखो तो मालूम होता है, अभी अनाथालय से पकड़कर आये हैं!

रामहरख बोले—अमीरों का ऐसा स्वभाव बहुत कम देखने में आता है। कोई भाँप ही नहीं सकता।

रियासतअली ने समर्थन किया—आपने महाराज चाँगली को देखा होता, तो दाँतों तले उँगली दबाते। एक गाढ़े की मिर्जई और चमरौधे जूते पहने बाजारों में घूमा करते थे। सुनते हैं, एक बार बेगार में पकड़ गये थे और उन्हीं ने दस लाख से कॉलेज खोल दिया।

मैं मन में कटा जा रहा था, पर न जाने क्या बात थी कि वह सफ़ेद झूठ उस वक्त मुझे हास्यास्पद न जान पड़ा। उसके प्रत्येक वाक्य के साथ मानों मैं उस कल्पित वैभव के समीपतर आता जाता था।

मैं शहसवार नहीं हूँ। हाँ, लड़कपन में कई बार लद्दू घोड़ों पर सवार हुआ हूँ। यहाँ देखा तो दो कलाँ-रास घोड़े हमारे लिए तैयार खड़े थे। मेरी तो जान ही निकल गई। सवार तो हुआ, पर बोटियाँ काँप रही थीं। मैंने

चेहरे पर शिकन न पड़ने दीया। घोड़े को ईश्वरी के पीछे डाल दिया। ख़ैरियत यह हुई कि ईश्वरी ने घोड़े को तेज़ न किया, वरना शायद मैं हाथ पाँव तुड़वाकर लौटता। सम्भव है, ईश्वरी ने समझ लिया हो कि यह कितने पानी में हैं।

(३)

ईश्वरी का घर क्या था, क़िला था। इमामबाड़े का सा फाटक, द्वार पर पहरेदार टहलता हुआ, नौकरों का कोई हिसाब नहीं, एक हाथी बँधा हुआ। ईश्वरी ने अपने पिता, चाचा, ताऊ, आदि सबसे मेरा परिचय कराया और उसी अतिशयोक्ति के साथ। ऐसी हवा बाँधी कि कुछ न पूछिए। नौकर-चाकर ही नहीं, घर के लोग भी मेरा सम्मान करने लगे। देहात के ज़मींदार, लाखों का मुनाफ़ा, मगर पुलिस कान्स्टेबिल को भी अफ़सर समझनेवाले। कई महाशय तो मुझे हुजूर-हुजूर कहने लगे।

जब ज़रा एकान्त हुआ, तो मैंने ईश्वरी से कहा—तुम बड़े शैतान हो यार, मेरी मिट्टी क्यों पलीद कर रहे हो ?

ईश्वरी ने सुदृढ मुस्कान के साथ कहा—इन गधों के सामने यही चाल ज़रूरी थी, वरना सीधे मुँह बोलते भी नहीं।

ज़रा देर बाद एक नाई हमारे पाँव दबाने आया। कुँवर लोग स्टेशन से आये हैं, थक गये होंगे। ईश्वरी ने मेरी ओर इशारा करके कहा—पहले कुँवर साहब के पाँव दबा।

मैं चारपाई पर लेटा हुआ था। जीवन में ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि किसी ने मेरे पाँव दबाये हों। मैं इसे अमीरों के चोंचले, रईसों का गधापन और बड़े आदमियों की मुटमरदी और जाने क्या-क्या कहकर ईश्वरी का परिहास किया करता और आज मैं पोतड़ों का रईस बनने का स्वाँग भर रहा था।

इतने में दस बज गये। पुरानी सभ्यता के लोग थे। नई रोशनी अभी केवल पहाड़ की चोटी तक पहुँच पाई थी। अन्दर से भोजन का बुलावा आया। हम स्नान करने चले। मैं हमेशा अपनी धोती खुद छाँट लिया करता हूँ, मगर यहाँ मैंने ईश्वरी की ही भाँति अपनी धोती भी छोड़ दी। अपने

हाथों अपनी धोती छाँटते बड़ी शर्म आ रही थी। अन्दर भोजन करने चले। होस्टल में जूते पहने मेज पर जा डटते थे। यहाँ पाँव धोना आवश्यक था। कहार पानी लिये खड़ा था। ईश्वरी ने पाँव बढ़ा दिये। कहार ने उसके पाँव धोये। मैंने भी पाँव बढ़ा दिये। कहार ने मेरे पाँव भी धोये। मेरा वह विचार न जाने कहाँ चला गया था।

(४)

सोचा था, वहाँ देहात में एकाग्र होकर खूब पढ़ेंगे, पर यहाँ सारा दिन सैर सपाटे में कट जाता था। कहीं नदी में बजरे पर सैर कर रहे हैं, कहीं मछलियों या चिड़ियों का शिकार खेल रहे हैं, कहीं पहलवानों की कुश्ती देख रहे हैं, कहीं शतरंज पर जमे हैं। ईश्वरी खूब अण्डे मँगवाता और कमरे में 'स्टोव' पर आमलेट बनते। नौकरों का एक जत्था हमेशा घेरे रहता। अपने हाथ-पाँव को हिलाने की कोई ज़रूरत नहीं। केवल ज़बान हिला देना काफ़ी है। नहाने बैठे तो दो आदमी नहलाने को हाज़िर, लेटे तो दो आदमी पङ्खा झलने को खड़े। मैं महात्मा गांधी का कुँअर चेला मशहूर था। भीतर से बाहर तक मेरी धाक थी। नाश्ते में ज़रा भी देर न होने पाये, कहीं कुँअर साहब नाराज़ न हो जायँ, बिछावन ठीक समय पर लग जाय, कुँअर साहब के सोने का समय आ गया। मैं ईश्वरी से भी ज्यादा नाज़ुक-दिमाग़ बन गया था, या बनने पर मजबूर किया गया था। ईश्वरी अपने हाथ से बिस्तर बिछा ले, लेकिन कुँअर मेहमान अपने हाथों कैसे अपना बिछावन बिछा सकते हैं! उनकी महानता में बट्टा लग जायगा।

एक दिन सचमुच यही बात हो गई। ईश्वरी घर में थे। शायद अपनी माता से कुछ बातचीत करने में देर हो गई। यहाँ दस बज गये। मेरी आँखें नींद से झपक रही थीं। मगर बिस्तर कैसे लगाऊँ? कुँअर जो ठहरा। कोई साढे ग्यारह बजे महरा आया। बड़ा मुँह लगा नौकर था। घर के धन्धों में मेरा बिस्तर लगाने की उसे सुधि ही न रही। अब जो याद आई, तो भागा हुआ आया। मैंने ऐसी डाँट बताई कि उसने भी याद किया होगा।

ईश्वरी मेरी डाँट सुनकर बाहर निकल आया और बोला—तुमने बहुत अच्छा किया। यह सब हरामख़ोर इसी व्यवहार के योग्य हैं।

इसी तरह ईश्वरी एक दिन एक जगह दावत में गया हुआ था। शाम हो गई, मगर लैम्प न जला। लैम्प मेज़ पर रखा हुआ था। दीयासलाई भी वहीं थी, लेकिन ईश्वरी खुद कभी लैम्प नहीं जलाता। फिर कुँअर साहब कैसे जलायें! मैं भुँभला रहा था। समाचारपत्र आया रखा हुआ था। जी उधर लगा हुआ था, पर लैम्प नदारद। देवयोग से उसी वक्त मुन्शी रियासतअली आ निकले। मैं उन्हीं पर उबल पड़ा। ऐसी फटकार बताई कि बेचारा उल्लू हो गया—तुम लोगों को इतनी फ़िक्र भी नहीं कि लेम्प तो जलवा दो! मालूम नहीं, ऐसे कामचोर आदमियों का यहाँ कैसे गुज़र होता है। मेरे यहाँ घण्टे भर निर्वाह न हो। रियासतअली ने काँपते हुए हाथों से लैम्प जला दिया।

वहाँ एक ठाकुर अक्सर आया करता था। कुछ मनचला आदमी था, महात्मा गांधी का परम भक्त। मुझे महात्माजी का चेला समझकर मेरा बड़ा लिहाज करता था, पर मुझसे कुछ पूछते सकोच करता था। एक दिन मुझे अकेला देखकर आया और हाथ बांधकर बोला—सरकार तो गाँधी बाबा के चेले हैं न? लोग कहते हैं कि यहाँ सुराज हो जायगा तो जमींदार न रहेंगे।

मैंने शान जमाई—ज़मीदारों के रहने की जरूरत ही क्या है? यह लोग ग़रीबों का खून चूसने के सिवा और क्या करते हैं?

ठाकुर ने फिर पूछा—तो क्यों सरकार, सब जमींदारों की जमीन छीन ली जायगी?

मैंने कहा—बहुत से लोग तो खुशी से दे देंगे। जो लोग खुशी से न देंगे, उनकी ज़मीन छीननी ही पड़ेगी। हम लोग तो तैयार बैठे हुए हैं। ज्यों ही स्वराज्य हुआ, अपने सारे इलाके असामियों के नाम लिखा कर देंगे।

मैं कुरसी पर पाँव लटकाये बैठा था। ठाकुर मेरे पाँव दबाने लगा। फिर बोला—आजकल ज़मींदार लोग बड़ा जुलुम करते हैं सरकार! हमें भी हुजूर अपने इलाके में थोड़ी-सी जमीन दे दें, तो चलकर वहीं आपकी सेवा में रहें।

मैंने कहा—अभी तो मेरा कोई अख्तियार नहीं है भाई, लेकिन ज्यों ही

अख्तियार मिला, मैं सबसे पहले तुम्हें बुलाऊँगा। तुम्हें मोटर ड्राइवरी सिखाकर अपना ड्राइवर बना लूँगा।

सुना, उस दिन ठाकुर ने खूब भङ्ग पी और अपनी स्त्री को खूब पीटा और गाँव के महाजन से लड़ने पर तैयार हो गया।

(५)

छुट्टी इस तरह तमाम हुई और हम फिर प्रयाग चले। गाँव के बहुत से लोग हम लोगों को पहुँचाने आये। ठाकुर तो हमारे साथ स्टेशन तक आया। मैंने भी अपना पार्ट खूब सफाई से खेला और अपनी कुबेरोचित विनय और देवत्व की मुहर हर एक के हृदय पर लगा दी। जी तो चाहता था, हरेक नौकर को अच्छा इनाम दूँ, लेकिन वह सामर्थ्य कहाँ थी? वापसी टिकट था ही, केवल गाड़ी में बैठना था, पर गाड़ी आई तो ठसाठस भरी हुई। दुर्गापूजा की छुट्टियाँ भोगकर सभी लोग लौट रहे थे। सेकेण्ड क्लास में तिल रखने की जगह नहीं। इण्टर क्लास की हालत उससे भी बदतर। यह आखिरी गाड़ी थी। किसी तरह रुक न सकते थे। बड़ी मुश्किल से तीसरे दरजे में जगह मिली। हमारे ऐश्वर्य ने वहाँ अपना रङ्ग जमा लिया, मगर मुझे उसमें बैठना बुरा लग रहा था। आये थे आराम से लेटे-लेटे, जा रहे थे सिकुड़े हुए। पहलू बदलने की भी जगह न थी।

कई आदमी पढ़े लिखे भी थे। वे आपस में अङ्गरेजी स्वराज्य की तारीफ़ करते जा रहे थे। एक महाशय बोले—ऐसा न्याय तो किसी राज्य में नहीं देखा। छोटे बड़े सब बराबर। राजा भी किसी पर अन्याय करे, तो अदालत उसकी भी गर्दन दबा देती है।

दूसरे सज्जन ने समर्थन किया—अरे साहब, आप खुद बादशाह पर दावा कर सकते हैं। अदालत में बादशाह पर भी डिग्री हो जाती है।

एक आदमी, जिसकी पीठ पर बड़ा-सा गट्ठर बँधा था, कलकत्ते जा रहा था। कहीं गठरी रखने की जगह न मिलती थी। पीठ पर बाँधे हुए था। इससे बेचैन होकर बार-बार द्वार पर खड़ा हो जाता। मैं द्वार के पास ही बैठा था। उसका बार-बार आकर मेरे मुँह को अपनी गठरी से रगड़ना मुझे बहुत बुरा लग रहा था। एक तो हवा यों ही कम थी, दूसरे उस गँवार

का आकर मेरे मुँह पर खड़ा हो जाना, मानों मेरा गला दबाना था। मैं कुछ देर तक ज़ब्त किये बैठा रहा। एकाएक मुझे क्रोध आ गया। मैंने उसे पकड़कर पीछे ढकेल दिया और दो तमाचे ज़ोर ज़ोर से लगाये।

उसने आँखें निकालकर कहा—क्यों मारते हो, बाबूजी, हमने भी किराया दिया है।

मैंने उठकर दो-तीन तमाचे और जड़ दिये।

गाड़ी में तूफ़ान आ गया। चारों ओर से बौछारें पड़ने लगीं।

'अगर इतने नाज़ुक मिज़ाज हो तो अव्वल दर्जे में क्यों नहीं बैठे?'

'कोई बड़ा आदमी होगा तो अपने घर का होगा। मुझे इस तरह मारते, तो दिखा देता।'

'क्या कसूर किया था बेचारे ने। गाड़ी में साँस लेने की जगह नहीं, खिड़की पर ज़रा साँस लेने खड़ा हो गया तो उसपर इतना क्रोध! अमीर होकर क्या आदमी अपनी इन्सानियत बिलकुल खो देता है?'

'यह भी अँग्रेज़ी राज है, जिसका आप बखान कर रहे थे।'

एक ग्रामीण बोला—दफ़तरन माँ घुसन तो पावत नहीं, उसपर इत्ता मिजाज!

ईश्वरी ने अँग्रेज़ी में कहा—What an idiot you are Bir और मेरा नशा अब कुछ-कुछ उतरता हुआ मालूम होता था।

रानी सारन्धा

(१)

अँधेरी रात के सन्नाटे में धसान नदी चट्टानों से टकराती हुई ऐसी सुहावनी मालूम होती थी जैसे घुमुर घुमुर करती हुई चक्कियाँ। नदी के दाहने तट पर एक टीला है। उसपर एक पुराना दुर्ग बना हुआ है, जिसको जंगली वृक्षों ने घेर रखा है। टीले के पूर्व की ओर एक छोटा सा गाँव है। यह गढ़ी और गाँव दोनों एक बुन्देला सरदार के कीर्ति चिह्न हैं। शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं, बुन्देलखण्ड में कितने ही राज्यों का उदय और अस्त हुआ, मुसलमान आये और गये, बुन्देला राजा उठे और गिरे, कोई गाँव, कोई इलाक़ा ऐसा न था, जो इन दुर्व्यवस्थाओं से पीड़ित न हो, मगर इस दुर्ग पर किसी शत्रु की विजय पताका न लहराई और इस गाँव में किसी विद्रोह का भी पदार्पण न हुआ। यह उसका सौभाग्य था।

अनिरुद्धसिंह वीर राजपूत था। वह ज़माना ही ऐसा था, जब मनुष्य मात्र को अपने बाहु-बल और पराक्रम ही का भरोसा था। एक ओर मुसलमान सेनाएँ पैर जमाये खड़ी रहती थीं, दूसरी ओर बलवान् राजा अपने निर्बल भाइयों का गला घोटने पर तत्पर रहते थे। अनिरुद्धसिंह के पास सवारों और पियादों का एक छोटा-सा, मगर सजीव दल था। इससे वह अपने कुल और मर्यादा की रक्षा किया करता था। उसे कभी चैन से बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतलादेवी से हुआ, मगर अनिरुद्ध विहार के दिन और विलास की रातें पहाड़ों में काटता था और शीतला उसकी जान की खैर मनाने में। वह कितनी बार पति से अनुरोध कर चुकी थी, कितनी बार उसके पैरों पर गिरकर रोई थी कि तुम मेरी आँखों से दूर न हो, मुझे हरिद्वार ले चलो। मुझे तुम्हारे साथ वन-वास अच्छा है, यह वियोग नहीं सहा जाता। उसने प्यार से कहा, ज़िद् से कहा, विनय की, मगर अनिरुद्ध बुन्देला था, शीतला अपने किसी हथियार से उसे परास्त न कर सकी।

देहली को चला गया। यह शाहजहाँ के शासन काल का अन्तिम भाग था। शाहजादा दारा शिकोह राजकीय कार्यों को सँभालते थे। युवराज की आँखों में शील था और चित्त में उदारता। उन्होंने चम्पतराय की वीरता की कथाएँ सुनी थीं, इसलिए उसका बहुत आदर सम्मान किया और कालपी की बहुमूल्य जागीर उसके भेंट की, जिसकी आमदनी नौ लाख थी। यह पहला अवसर था कि चम्पतराय को आये दिन की लड़ाई-झगड़े से निवृत्ति मिली और उसके साथ ही भोग विलास का प्राबल्य हुआ। रात-दिन आमोद प्रमोद की चर्चा रहने लगी। राजा विलास में डूबे, रानियाँ जड़ाऊ गहनों पर रीझीं। मगर सारन्धा इन दिनों बहुत उदास और सकुचित रहती। वह इन रहस्यों से दूर दूर रहती, ये नृत्य और गान की सभाएँ उसे सूनी प्रतीत होतीं।

एक दिन चम्पतराय ने सारन्धा से कहा—सारन, तुम उदास क्यों रहती हो ? मैं तुम्हें कभी हँसते नहीं देखता। क्या मुझसे नाराज़ हो ?

सारन्धा की आँखों में जल भर आया। बोली—स्वामीजी ! आप क्यों ऐसा विचार करते हैं ? जहाँ आप प्रसन्न हैं, वहाँ मैं भी खुश हूँ।

चम्पतराय—मैं जबसे यहाँ आया हूँ, मैंने तुम्हारे मुख कमल पर कभी मनोहारिणी मुसकिराहट नहीं देखी। तुमने कभी अपने हाथों से मुझे बीड़ा नहीं खिलाया। कभी मेरी पाग नहीं सँवारी, कभी मेरे शरीर पर शस्त्र नहीं सजाये। कहीं प्रेमलता मुरझाने तो नहीं लगी ?

सारन्धा—प्राणनाथ ! आप मुझसे वातें पूछते हैं, जिनका उत्तर मेरे पास नहीं है। यथार्थ में इन दिनों मेरा चित्त कुछ उदास रहता है। मैं बहुत चाहती हूँ कि खुश रहूँ, मगर एक बोझ-सा हृदय पर धरा रहता है।

चम्पतराय स्वयं आनन्द में मग्न थे। इसलिए उनके विचार में सारन्धा को असन्तुष्ट रहने का कोई उचित कारण नहीं हो सकता था। वे भौंहें सिकोड़कर बोले—मुझे तुम्हें उदास रहने का कोई विशेष कारण नहीं मालूम होता। ओरछे में कौन सा सुख था, जो यहाँ नहीं है ? सारन्धा का चेहरा लाल हो गया। बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज तो न होंगे ?

चम्पतराय—नहीं, शौक से कहो।

सारन्धा—ओरछा में मैं एक राजा की रानी थी। यहाँ मैं एक जागीरदार की चेरी हूँ। ओरछा में मैं वह थी जो अवध में कौशल्या थीं, परन्तु यहाँ मैं बादशाह के एक सेवक की स्त्री हूँ। जिस बादशाह के सामने आज आप आदर से सिर झुकाते हैं, वह कल आपके नाम से काँपता था। रानी से चेरी होकर भी प्रसन्न चित्त होना मेरे वश में नहीं है। आपने यह पद और ये विलास की सामग्रियाँ बड़े मँहगे दाम में मोल ली हैं।

चम्पतराय के नेत्रों से एक पर्दा सा हट गया। वे अब तक सारन्धा की आत्मिक उच्चता को न जानते थे। जैसे बे मा-बाप का बालक मा की चर्चा सुनकर रोने लगता है, उसी तरह ओरछा की याद से चम्पतराय की आँखें सजल हो गईं। उन्होंने आदर युक्त अनुराग के साथ सारन्धा को हृदय से लगा लिया।

आज से उन्हें फिर उसी उजड़ी बस्ती की फ़िक्र हुई, जहाँ से धन और कीर्ति की अभिलाषाएँ खींच लाई थीं।

(४)

मा अपने खोये हुए बालक को पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतराय के आने से बुन्देलखण्ड निहाल हो गया। ओरछा के भाग जागे। नौबतें झड़ने लगीं और फिर सारन्धा के कमल नेत्रों में जातीय अभिमान का आभास दिखाई देने लगा।

यहाँ रहते कई महीने बीत गये। इसी बीच में शाहजहाँ बीमार पड़ा। शाहजादाओं में पहले से ईर्ष्या की अग्नि दहक रही थी। यह ख़बर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्राम की तैयारियाँ होने लगीं। शाहज़ादा मुराद और मुहीउद्दीन अपने अपने दल सजाकर दक्खिन से चले। वर्षा के दिन थे। उर्वरा भूमि रंग बिरंग के रूप भरकर अपने सौन्दर्य को दिखाती थी।

मुराद और मुहीउद्दीन उमंगों से भरे हुए कदम बढ़ाते चले आते थे। यहाँ तक कि वे धौलपुर के निकट चम्बल के तट पर आ पहुँचे, परन्तु यहाँ उन्होंने बादशाही सेना को अपने शुभागमन के निमित्त तैयार पाया।

शाहज़ादे अब बड़ी चिन्ता में पड़े। सामने अगम्य नदी लहर मार रही थी, लोम से भी अधिक विस्तारवाली। घाट पर लोहे की दीवार खड़ी थी,

किसी योगी के त्याग के सदृश सुदृढ़। विवश होकर चम्पतराय के पास सँदेशा भेजा कि ख़ुदा के लिए आकर हमारी डूबती हुई नाव को पार लगाइए।

राजा ने भवन में जाकर सारन्धा से पूछा—इसका क्या उत्तर दूँ?

सारन्धा—आपको मदद करनी होगी।

चम्पतराय—उनकी मदद करना दाराशिकोह से बैर लेना है।

सारन्धा—यह सत्य है, परन्तु हाथ फैलाने की मर्यादा भी तो निभानी चाहिए।

चम्पतराय—प्रिये! तुमने सोचकर जवाब नहीं दिया।

सारन्धा—प्राणनाथ! मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि यह मार्ग कठिन है और हमें अपने योद्धाओं का रक्त पानी के समान बहाना पड़ेगा, परन्तु हम अपना रक्त बहायेंगे और चम्बल की लहरों को लाल कर देंगे। विश्वास रखिए कि जब तक नदी की धारा बहती रहेगी, वह हमारे वीरों का कीर्तिगान करती रहेगी। जब तक बुन्देलों का एक भी नामलेवा रहेगा, यह रक्त-बिन्दु उसके माथे पर केशर का तिलक बनकर चमकेगा।

वायुमण्डल में मेघराज की सेनाएँ उमड़ रही थीं। ओरछे के क़िले से बुन्देलों की एक काली घटा उठी और वेग के साथ चम्बल की तरफ़ चली। प्रत्येक सिपाही वीर-रस से झूम रहा था। सारन्धा ने दोनों राजकुमारों को गले से लगा लिया और राजा को पान का बीड़ा देकर कहा—बुन्देलों की लाज अब तुम्हारे हाथ है।

आज उसका एक एक अंग मुसकिरा रहा है और हृदय हुलसित है। बुन्देलों की यह सेना देखकर शाहज़ादे फूले न समाये। राजा वहाँ की अंगुल-अंगुल भूमि से परिचित थे। उन्होंने बुन्देलों को तो एक आड़ में छिपा दिया और वे शाहज़ादों की फ़ौज को सजाकर नदी के किनारे-किनारे पश्चिम की ओर चले। दाराशिकोह को भ्रम हुआ कि शत्रु किसी अन्य घाट से नदी उतरना चाहता है। उन्होंने घाट पर से मोर्चे हटा लिये। घाट में बैठे हुए बुन्देले इसी ताक में थे। बाहर निकल पड़े और तुरन्त ही नदी में घोड़े डाल दिये। चम्पतराय ने शाहज़ादा दाराशिकोह को भुलावा देकर अपनी फ़ौज घुमा दी और वह बुन्देलों के पीछे चलाता हुआ उसे पार उतार आया। इस कठिन

चाल में सात घंटों का विलम्ब हुआ, परन्तु जाकर देखा, तो सात सौ बुन्देला योद्धाओं की लाशें फड़क रही थीं।

राजा को देखते ही बुन्देलों की हिम्मत बँध गई। शाहजादा की सेना ने भी 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनी के साथ धावा किया। बादशाही सेना में हलचल मच गई। उनकी पंक्तियाँ छिन्न भिन्न हो गईं, हाथों हाथ लड़ाई होने लगी, यहाँ तक कि शाम हो गई। रण-भूमि रुधिर से लाल हो गई और आकाश में अँधेरा हो गया। घमासान की मार हो रही। बादशाही सेना शाहजादों को दबाये आती थी। अकस्मात् पश्चिम से फिर बुन्देलों की एक लहर उठी और इस वेग से बादशाही सेना की पुश्त पर टकराई कि उसके कदम उखड़ गये। जीता हुआ मैदान हाथ से निकल गया। लोगों को कौतूहल था कि यह दैवी सहायता कहाँ से आई। सरल स्वभाव के लोगों की धारणा थी कि यह फ़तह के फ़रिश्ते हैं, शाहजादों की मदद के लिए आये हैं, परन्तु जब राजा चम्पतराय निकट गये, तो सारन्धा ने घोड़े से उतरकर उनके पद पर सिर झुका दिया। राजा को असीम आनन्द हुआ। यह सारन्धा थी।

समर भूमि का दृश्य इस समय अत्यन्त दुःखमय था। थोड़ी देर पहले जहाँ सजे हुए वीरों के दल थे, वहाँ अब बे जान लाशें फड़क रही थीं। मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए आदि से ही भाइयों की हत्या की है।

अब विजयी सेना लूट पर टूटी। पहले मर्द मर्दों से लड़ते थे, अब वे मुर्दों से लड़ रहे थे। वह वीरता और पराक्रम का चित्र था, यह नीचता और दुर्बलता की ग्लानि प्रद तसवीर थी। उस समय मनुष्य पशु बना हुआ था, अब वह पशु से भी बढ़ गया था।

इस नोच खसोट में लोगों को बादशाही सेना के सेनापति वली बहादुर-खाँ की लाश दिखाई दी। उसके निकट उसका घोड़ा खड़ा हुआ अपनी दुम से मक्खियाँ उड़ा रहा था। राजा को घोड़ों का शौक था। देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। यह एराकी जाति का अति सुन्दर घोड़ा था। एक-एक अंग साँचे में ढला हुआ, सिंह की सी छाती, चीते की सी कमर। उसका यह प्रेम और स्वामिभक्ति देखकर लोगों को बड़ा कौतूहल हुआ। राजा ने हुक्म

दिया—खबरदार! इस प्रेमी पर कोई हथियार न चलाये, इसे जीता पकड़ ले, यह मेरे अस्तबल की शोभा बढ़ायेगा। जो इसे मेरे पास लायेगा—उसे धन से निहाल कर दूँगा।

योद्धागण चारों ओर से लपके, परन्तु किसी को साहस न होता था कि उसके निकट जा सके। कोई चुमकारता था, कोई फन्दे में फँसाने की फ़िक्र में था, पर कोई उपाय सफल न होता था। वहाँ सिपाहियों का एक मेला सा लगा हुआ था।

तब सारन्धा अपने खेमे से निकली और निर्भय होकर घोड़े के पास चली गई। उसकी आँखों में प्रेम का प्रकाश था, छल का नहीं। घोड़े ने सिर झुका दिया। रानी ने उसकी गर्दन पर हाथ रखा और वह उसकी पीठ सुहलाने लगी। घोड़े ने उसके अञ्चल में मुँह छिपा लिया। रानी उसकी रास पकड़कर खेमे की ओर चली। घोड़ा इस तरह चुपचाप उसके पीछे चला, मानों सदैव से उसका सेवक है।

पर बहुत अच्छा होता कि घोड़े ने सारन्धा से भी निष्ठुरता की होती। यह सुन्दर घोड़ा आगे चलकर इस राज्य-परिवार के निमित्त रत्न जटित मृग प्रतीत हुआ।

(५)

संसार एक रण क्षेत्र है। इस मैदान में उसी सेनापति को विजय-लाभ होता है, जो अवसर को पहचानता है। वह अवसर देखकर जितने उत्साह से बढ़ता है, उतने ही उत्साह से आपत्ति के समय पर पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष राष्ट्र का निर्माता होता है, और इतिहास उसके नाम पर यश के फूलों की वर्षा करता है।

पर इस मैदान में कभी-कभी ऐसे सिपाही भी आ जाते हैं, जो अवसर पर कदम बढ़ाना चाहते हैं, लेकिन संकट में पीछे हटना नहीं जानते। यह रणधीर पुरुष विजय को नीति भेंट कर देता है। वह अपनी सेना का नाम मिटा देगा, किन्तु जहाँ पर एक बार पहुँच गया है, वहाँ से कदम पीछे न हटायेगा। उनमें कोई विरला ही संसार क्षेत्र में विजय प्राप्त करता है, किन्तु प्राय, उसकी हार विजय से भी गौरवात्मक होती है। अगर यह अनुभवशील

सेनापति राष्ट्र की नींव डालता है, तो यह आप जान देनेवाला, यह मुँह न मोड़नेवाला सिपाही राष्ट्र के भावों को उच्च करता है और उसके हृदय पर नैतिक गौरव को अंकित कर देता है। उसे इस कार्य क्षेत्र में चाहे सफलता न हो, किन्तु जब किसी वाक्य या सभा में उसका नाम ज़बान पर आ जाता है, तो श्रोतागण एक स्वर से उसके कीर्ति गौरव को प्रतिध्वनित कर देते हैं। सारन्धा इन्हीं 'आन पर जान देनेवालों में' थी।

शाहज़ादा मुहीउद्दीन चम्बल के किनारे से आगरे की ओर चला तो सौभाग्य उसके सिर पर मोर्छल हिलाता था। जब वह आगरे पहुँचा तो विजयदेवी ने उसके लिए सिंहासन सजा दिया।

औरंगजेब गुणज्ञ था। उसने बादशाही सरदारों के अपराध क्षमा कर दिये, उनके राज्यपद लौटा दिये और राजा चम्पतराय को उसके बहुमूल्य कृत्यों के उपलक्ष्य में 'बारह हजारी मन्सब' प्रदान किया। ओरछा से बनारस और बनारस से यमुना तक उसकी जागीर नियत की गई। बुन्देला राजा फिर राज्य सेवक बना, वह फिर सुख विलास में डूबा और रानी सारन्धा फिर पराधीनता के शोक से घुलने लगी।

वलीबहादुरखाँ बड़ा वाक्यचतुर मनुष्य था। उसकी मृदुलता ने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगीर का विश्वास पात्र बना दिया। उस पर राज सभा में सम्मान की दृष्टि पड़ने लगी।

खाँसाहब के मन में अपने घोड़े के हाथ से निकल जाने का बड़ा शोक था। एक दिन कुँअर छत्रसाल उसी घोड़े पर सवार होकर सैर को गया था। वह खाँसाहब के महल की तरफ़ जा निकला। वलीबहादुर ऐसे ही अवसर की ताक में था। उसने तुरत अपने सेवकों को इशारा किया। राजकुमार अकेला क्या करता। पाँव पाँव घर आया और उसने सारन्धा से सब समाचार बयान किया। रानी का चेहरा तमतमा गया। बोली—मुझे इसका शोक नहीं कि घोड़ा हाथ से गया, शोक इसका है कि तू उसे खोकर जीता क्यों लौटा, क्या तेरे शरीर में बुन्देलों का रक्त नहीं है? घोड़ा न मिलता, न सही, किन्तु तुझे दिखा देना चाहिए था कि एक बुन्देला बालक से उसका घोड़ा छीन लेना हँसी नहीं है।

यह कहकर उसने अपने पचीस योद्धाओं को तैयार होने की आज्ञा दी, स्वयं अस्त्र धारण किये और योद्धाओं के साथ वलीबहादुरखाँ के निवास-स्थान पर जा पहुँची। खाँसाहब उसी घोड़े पर सवार होकर दरबार चले गये थे। सारन्धा दरबार की तरफ़ चली और एक क्षण में किसी वेगवती नदी के सदृश बादशाही दरबार के सामने जा पहुँची। यह कैफ़ियत देखते ही दरबार में हलचल मच गई। अधिकारी वर्ग इधर उधर से आकर जमा हो गये। आलमगीर भी सहन से निकल आये। लोग अपनी अपनी तलवारें सँभालने लगे और चारों तरफ़ शोर मच गया। कितने ही नेत्रों ने इसी दरबार में अमरसिंह की तलवार की चमक देखी थी। उन्हें वही घटना फिर याद आ गई।

सारन्धा ने उच्च स्वर से कहा—खाँसाहब! बड़ी लज्जा की बात है कि आपने वह वीरता जो चम्बल के तट पर दिखानी चाहिए थी, आज एक अबोध बालक के सम्मुख दिखाई है। क्या यह उचित था कि आप उससे घोड़ा छीन लेते?

वलीबहादुरखाँ की आँखों से अग्नि ज्वाला निकल रही थी। वे कड़ी आवाज़ से बोले—किसी ग़ैर को क्या मजाल है कि मेरी चीज़ अपने काम में लाये?

सारन्धा—वह आपकी चीज़ नहीं, मेरी है। मैंने उसे रण-भूमि में पाया है और उसपर मेरा अधिकार है। क्या रणनीति की इतनी मोटी बात भी आप नहीं जानते?

खाँसाहब—वह घोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदले में सारा अस्तबल आपकी नज़र है।

रानी—मैं अपना घोड़ा लूँगी।

खाँसाहब—मैं उसके बराबर जवाहरात दे सकता हूँ। परन्तु घोड़ा नहीं दे सकता।

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवारों से होगा।

बुन्देला योद्धाओं ने तलवारें सौंत लीं और निकट था कि दरबार की भूमि रक्त से प्लावित हो जाय कि बादशाह आलमगीर ने बीच में आकर

कहा—रानी साहबा! आप सिपाहियों को रोकें। घोड़ा आपको मिल जायगा, परन्तु उसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिए अपना सर्वस्व त्यागने पर तैयार हूँ।

बादशाह—जागीर और मनसब भी!

रानी—जागीर और मनसब कोई चीज़ नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी!

रानी—हाँ राज्य भी।

बादशाह—एक घोड़े के लिए!

रानी—नहीं, उस पदार्थ के लिए, जो संसार में सबसे अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है!

रानी—अपनी आन।

इस भाँति रानी ने एक घोड़े के लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज्य-पद और राज-सम्मान सब हाथ से खोया और केवल इतना ही नहीं, भविष्य के लिए काँटे बोये। इस घड़ी से अन्त दशा तक चम्पतराय को शान्ति न मिली।

(५)

राजा चम्पतराय ने फिर ओरछे के किले में पदार्पण किया। उन्हें मनसब और जागीर के हाथ से निकल जाने का अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु उन्होंने अपने मुँह से शिकायत का एक शब्द भी नहीं निकाला। वे सारन्धा के स्वभाव को भलीभाँति जानते थे। शिकायत इस समय उसके आत्म-गौरव पर कुठार का काम करती। कुछ दिन यहाँ शान्ति-पूर्वक व्यतीत हुए, लेकिन बादशाह सारन्धा की कठोर बातें भूला न था। वह क्षमा करना जानता ही न था। ज्यों ही भाइयों की ओर से निश्चिन्त हुआ, उसने एक बड़ी सेना चम्पतराय का गर्व चूर्ण करने के निमित्त भेजी और बाईस अनुभवशील सरदार इस मुहीम पर नियुक्त किये। शुभकरण बुन्देला बादशाह का सूबेदार था। वह चम्पतराय का बचपन का मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतराय को परास्त करने का बीड़ा उठाया। और भी कितने बुन्देला ही सरदार

राजा से विमुख होकर बादशाही सूबेदार से आ मिले। एक घोर संग्राम हुआ। भाइयों की तलवारें रक्त से लाल हुईं। यद्यपि इस समर में राजा को विजय प्राप्त हुई, लेकिन उनकी शक्ति सदा के लिए क्षीण हो गई। निकटवर्ती बुन्देला राजा, जो चम्पतराय के बाहु बल थे, बादशाह के कृपाकांक्षी बन बैठे। साथियों में कुछ तो काम आये, कुछ दगा कर गये। यहाँ तक कि निज सम्बन्धियों ने भी आँखें चुरा लीं, परन्तु इन कठिनाइयों में भी चम्पतराय ने हिम्मत नहीं हारी। धीरज को न छोड़ा। उन्होंने ओरछा छोड़ दिया और तीन वर्ष तक बुन्देलखण्ड के सघन पर्वतों पर छिपे फिरते रहे। बादशाही सेनाएँ शिकारी जानवरों की भाँति सारे देश में मँडरा रही थीं। आये दिन राजा का किसी न-किसी से सामना हो जाता था। सारन्धा सदैव उनके साथ रहती और उनका उत्साह बढ़ाया करती। बड़ी बड़ी आपत्तियों में भी, जब कि धैर्य लुप्त हो जाता—और आशा साथ छोड़ देती—आत्मरक्षा का धर्म उसे सँभाले रहता था। तीन साल के बाद अन्त में बादशाह के सूबेदारों ने आलमगीर को सूचना दी कि इस शेर का शिकार आपके सिवाय और किसी से न होगा। उत्तर आया कि सेना को हटा लो और घेरा उठा लो। राजा ने समझा, संकट से निवृत्ति हुई, पर यह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गई।

(७)

तीन सप्ताह से बादशाही सेना ने ओरछा घेर रखा है। जिस तरह कठोर वचन हृदय को छेद डालते हैं, उसी तरह तोपों के गोलों ने दीवारों को छेद डाला है। किले में २० हज़ार आदमी घिरे हुए हैं, लेकिन उनमें आधे से अधिक स्त्रियाँ और उनसे कुछ ही कम बालक हैं। मर्दों की संख्या दिनोंदिन न्यून होती जाती है, आने जाने के मार्ग चारों तरफ़ से बन्द हैं। हवा का भी गुज़र नहीं। रसद का सामान बहुत कम रह गया है। स्त्रियाँ पुरुषों और बालकों को जीवित रखने के लिए आप उपवास करती हैं। लोग बहुत हताश हो रहे हैं। औरतें सूर्यनारायण की ओर हाथ उठा-उठाकर शत्रु को कोसती हैं। बालकवृन्द मारे क्रोध के दीवारों की आड़ से उनपर पत्थर फेंकते हैं, जो मुश्किल से दीवार के उस पार जाते हैं। राजा चम्पतराय स्वयम्

ज्वर से पीड़ित हैं। उन्होंने कई दिन से चारपाई नहीं छोड़ी। उन्हें देखकर लोगों को कुछ ढारस होता था, लेकिन उनकी बीमारी से सारे किले में नैराश्य छाया हुआ है।

राजा ने सारन्धा से कहा—आज शत्रु ज़रूर किले में घुस आयेंगे।

सारन्धा—ईश्वर न करे कि इन आँखों से वह दिन देखना पड़े।

राजा—मुझे बड़ी चिन्ता इन अनाथ स्त्रियों और बालकों की है। गेहूँ के साथ यह घुन भी पिस जायेंगे।

सारन्धा—हम लोग यहाँ से निकल जायें, तो कैसा?

राजा—इन अनाथों को छोड़कर?

सारन्धा—इस समय इन्हें छोड़ देने ही में कुशल है। हम न होंगे, तो शत्रु इनपर कुछ दया अवश्य ही करेंगे।

राजा—नहीं, यह लोग मुझसे न छोड़े जायेंगे। जिन मर्दों ने अपनी जान हमारी सेवा में अर्पण कर दी है, उनकी स्त्रियों और बच्चों को मैं यों कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारन्धा—लेकिन यहाँ रहकर हम उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते।

राजा—उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं? मैं उनकी रक्षा में अपनी जान लड़ा दूँगा। उनके लिए बादशाही सेना की खुशामद करूँगा। कारावास की कठिनाइयाँ सहूँगा, किन्तु इस सकट में उन्हें छोड़ नहीं सकता।

सारन्धा ने लज्जित होकर सिर झुका लिया और सोचने लगी—निस्सन्देह अपने प्रिय साथियों को आग की आँच में छोड़कर अपनी जान बचाना घोर नीचता है। मैं ऐसी स्वार्थान्ध क्यों हो गई हूँ? लेकिन फिर एकाएक विचार उत्पन्न हुआ। बोली—यदि आपको विश्वास हो जाय कि इन आदमियों के साथ कोई अन्याय न किया जायगा, तब तो आपको चलने में कोई बाधा न होगी।

राजा—(सोचकर) कौन विश्वास दिलायेगा?

सारन्धा—बादशाह के सेनापति का प्रतिज्ञापत्र।

राजा—तब मैं सानन्द चलूँगा।

सारन्धा विचार-सागर में डूबी। बादशाह के सेनापति से क्योंकर यह प्रतिज्ञा कराऊँ? कौन यह प्रस्ताव लेकर वहाँ जायगा और वे निर्दयी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे। उन्हें तो अपनी विजय की पूरी आशा है। मेरे यहाँ ऐसा नीति-कुशल, वाक्पटु, चतुर कौन है, जो इस दुस्तर कार्य को सिद्ध करे। छत्रसाल चाहे तो कर सकता है। उसमें ये सब गुण मौजूद हैं।

इस तरह मन में निश्चित करके रानी ने छत्रसाल को बुलाया। यह उसके चारों पुत्रों में सबसे बुद्धिमान् और साहसी था। रानी उसे सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छत्रसाल ने आकर रानी को प्रणाम किया, तो उसके कमलनेत्र सजल हो गये और हृदय से दीर्घ निःश्वास निकल आया।

छत्रसाल—माता, मेरे लिए क्या आज्ञा है?

रानी—आज लड़ाई का क्या ढङ्ग है?

छत्रसाल—हमारे पचास योद्धा अब तक काम आ चुके हैं।

रानी—बुन्देलों की लाज अब ईश्वर के हाथ है।

छत्रसाल—हम आज रात को छापा मारेंगे।

रानी ने संक्षेप में अपना प्रस्ताव छत्रसाल के सामने उपस्थित किया और कहा—यह काम किसको सौंपा जाये?

छत्रसाल—मुझको।

'तुम इसे पूरा कर दिखाओगे?'

'हाँ, मुझे पूर्ण विश्वास है।'

'अच्छा जाओ, परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूरा करे।'

छत्रसाल जब चला, तो रानी ने उसे हृदय से लगा लिया और तब आकाश की ओर दोनों हाथ उठाकर कहा—दयानिधे, मैंने अपना तरुण और होनहार पुत्र बुन्देलों की आन के आगे भेंट कर दिया। अब इस आन को निभाना तुम्हारा काम है। मैंने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है। इसे स्वीकार करो।

(८)

दूसरे दिन प्रातःकाल सारन्धा स्नान करके थाल में पूजा की सामग्री लिये मन्दिर को चली। उसका चेहरा पीला पड़ गया था और आँखों-तले अँधेरा

छाया जाता था। वह मन्दिर के द्वार पर पहुँची थी कि उसके थाल में बाहर से आकर एक तीर गिरा। तीर की नोक पर एक कागज का पुर्जा लिपटा हुआ था। सारन्धा ने थाल मन्दिर के चबूतरे पर रख दिया और पुर्जे को खोलकर देखा, तो आनन्द से चेहरा खिल गया, लेकिन यह आनन्द क्षण-भर का मेहमान था। हाय! इस पुर्जे के लिए मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथ से खो दिया है। कागज के टुकड़े को इतने मँहगे दामों किसने लिया होगा!

मन्दिर से लौटकर सारन्धा राजा चम्पतराय के पास गई और बोली—प्राणनाथ! आपने जो वचन दिया था, उसे पूरा कीजिए। राजा ने चौंककर पूछा—तुमने अपना वादा पूरा कर लिया? रानी ने वह प्रतिज्ञा-पत्र राजा को दे दिया। चम्पतराय ने उसे गौरव से देखा, फिर बोले—अब मैं चलूँगा और ईश्वर ने चाहा, तो एक बेर फिर शत्रुओं की खबर लूँगा, लेकिन सारन! सच बताओ, इस पत्र के लिए क्या देना पड़ा?

रानी ने कुण्ठित स्वर से कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूँ?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजा को बाण सा लगा। पूछा—कौन? अंगदराय?

रानी—नहीं।

राजा—रतनशाह?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल?

रानी—हाँ।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परों को फड़फड़ाता है और तब बेदम होकर गिर पड़ता है, उसी भाँति चम्पतराय पलग से उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परमप्रिय पुत्र था। उनके भविष्य की सारी कामनाएँ उसी पर अवलम्बित थीं। जब चेत हुआ, तो बोले—सारन, तुमने बुरा किया, अगर छत्रसाल मारा गया, तो बुंदेला-वंश का नाश हो जायगा।

अँधेरी रात थी। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार चम्पतराय को पालकी

में बैठाये किले के गुप्त मार्ग से निकली जाती थी। आज से बहुत काल पहले जब एक दिन ऐसी ही अँधेरी, दुःखमय रात्रि थी, तब सारन्धा ने शीतलादेवी को कुछ कठोर वचन कहे थे। शीतलादेवी ने उस समय जो भविष्यवाणी की थी, वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धा ने उसका जो उत्तर दिया था, वह भी पूरा होकर रहेगा?

(६)

मध्याह्न था। सूर्यनारायण सिर पर आकर अग्नि की वर्षा कर रहे थे। शरीर को झुलसानेवाली प्रचण्ड, प्रखर वायु, वन और पर्वतों में आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था, मानों अग्निदेव की समस्त सेना गरजती हुई चली आ रही है। गगन मण्डल इस भय से काँप रहा था। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार, चम्पतराय को लिये, पच्छिम की तरफ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता कि अब हम भय के क्षेत्र से बाहर निकल आये। राजा पालकी में अचेत पड़े हुए थे। और कहार पसीने में शराबोर थे। पालकी के पीछे पाँच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे। प्यास के मारे सबका बुरा हाल था। तालू सूखा जाता था। किसी वृक्ष की छाँह और कुएँ की तलाश में आँखें चारों ओर दौड़ रही थीं।

अचानक सारन्धा ने पीछे की तरफ़ फिरकर देखा, तो उसे सवारों का एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नहीं है। ये लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि शायद मेरे राजकुमार अपने आदमियों को लिये हमारी सहायता को आ रहे हैं। नैराश्य में भी आशा साथ नहीं छोड़ती। कई मिनट तक वह इसी आशा और भय की अवस्था में रही। यहाँ तक कि वह दल निकट आ गया और सिपाहियों के वस्त्र साफ़ नज़र आने लगे। रानी ने एक ठण्डी साँस ली, उसका शरीर तृणवत् काँपने लगा। यह बादशाही सेना के लोग थे।

सारन्धा ने कहारों से कहा—डोली रोक लो। बुन्देला सिपाहियों ने भी तलवारें खींच लीं। राजा की अवस्था बहुत शोचनीय थी, किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार इस संकट का

ज्ञान होते ही उनके जर्जर शरीर में वीरात्मा चमक उठी। वे पालकी का पर्दा उठाकर बाहर निकल आये। धनुष बाण हाथ में ले लिया, किन्तु वह धनुष जो उनके हाथ में इन्द्र का वज्र बन जाता था, इस समय ज़रा भी न झुका। सिर में चक्कर आया, पैर थर्राये और वे धरती पर गिर पड़े। भावी अमंगल की सूचना मिल गई। उस पक्ष रहित पक्षी के सदृश, जो साँप को अपनी तरफ़ आते देखकर ऊपर को उचकता और फिर गिर पड़ता है, राजा चम्पतराय फिर सँभलकर उठे और फिर गिर पड़े। सारन्धा ने सँभालकर बैठाया और रोकर बोलने की चेष्टा की, परन्तु मुँह से केवल इतना निकला—प्राणनाथ—इसके आगे उसके मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। आन पर मरनेवाली सारन्धा इस समय साधारण स्त्रियों की भाँति शक्तिहीन हो गई, लेकिन एक अंश तक यह निर्बलता स्त्री जाति की शोभा है।

चम्पतराय बोले—सारन! देखो, हमारा एक और वीर ज़मीन पर गिरा। शोक! जिस आपत्ति से यावज्जीवन डरता रहा, उसने इस अंतिम समय आ घेरा। मेरी आँखों के सामने शत्रु तुम्हारे कोमल शरीर में हाथ लगायेंगे, और मैं जगह से हिल भी न सकूँगा। हाय! मृत्यु तू कब आयगी! यह कहते-कहते उन्हें एक विचार आया। तलवार की तरफ़ हाथ बढ़ाया, मगर हाथों में दम न था। तब सारन्धा से बोले—प्रिये! तुमने कितने ही अवसरों पर मेरी आन निभाई है।

इतना सुनते ही सारन्धा के मुरझाये हुए मुख पर लाली दौड़ गई, आँसू सूख गये। इस आशा ने कि मैं अब भी पति के कुछ काम आ सकती हूँ, उसके हृदय में बल का संचार कर दिया। वह राजा की ओर विश्वासोत्पादक भाव से देखकर बोली—ईश्वर ने चाहा, तो मरते दम तक निभाऊँगी।

रानी ने समझा, राजा मुझे प्राण दे देने का संकेत कर रहे हैं!

चम्पतराय—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दम तक न टालूँगी।

राजा—यह मेरी अंतिम याचना है। इसे अस्वीकार न करना।

सारन्धा ने तलवार को निकालकर अपने वक्षस्थल पर रख लिया और

कहा—यह आपकी आज्ञा नहीं है, मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मरूँ, तो यह मस्तक आपके पद कमलों पर हो।

चम्पतराय—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। क्या तुम मुझे इसलिए शत्रुओं के हाथ में छोड़ जाओगी कि मैं बेड़ियाँ पहने हुए दिल्ली की गलियों में निन्दा का पात्र बनूँ?

रानी ने जिज्ञासा दृष्टि से राजा को देखा। वह उनका मतलब न समझी।

राजा—मैं तुमसे एक वरदान माँगता हूँ।

रानी—सहर्ष माँगिए।

राजा—यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूँगा, करोगी?

रानी—सिर के बल करूँगी।

राजा—देखो, तुमने वचन दिया है। इनकार न करना।

रानी—(काँपकर) आपके कहने की देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छाती में चुभा दो।

रानी के हृदय पर वज्रपात-सा हो गया। बोली—जीवन-नाथ!—इसके आगे वह और कुछ न बोल सकी—आँखों में नैराश्य छा गया।

राजा—मैं बेड़ियाँ पहनने के लिए जीवित रहना नहीं चाहता।

रानी—हाय, यह मुझसे कैसे होगा?

पाँचवाँ और अन्तिम सिपाही धरती पर गिरा। राजा ने झुँझलाकर कहा—इसी जीवट पर आन निभाने का गर्व था?

बादशाह के सिपाही राजा की तरफ लपके। राजा ने नैराश्य-पूर्ण भाव से रानी की ओर देखा। रानी क्षण भर अनिश्चित-रूप से खड़ी रही, लेकिन सङ्कट में हमारी निश्चयात्मक शक्ति बलवान हो जाती है। निकट था कि सिपाही लोग राजा को पकड़ लें कि सारन्धा ने दामिनी की भाँति लपककर अपनी तलवार राजा के हृदय में चुभा दी!

प्रेम की नाव प्रेम के सागर में डूब गई। राजा के हृदय से रुधिर की धारा निकल रही थी, पर चेहरे पर शान्ति छाई हुई थी, कैसा करुण दृश्य है! वह स्त्री जो अपने पति पर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघातिका है! जिस हृदय से आलिङ्गित होकर उसने यौवन सुख लूटा, जो हृदय उसकी

अभिलाषाओं का केन्द्र था, जो हृदय उसके अभिमान का पोषक था, उसी हृदय को आज सारन्धा की तलवार छेद रही है। किस स्त्री की तलवार से ऐसा काम हुआ है!

आह! आत्माभिमान का कैसा विषादमय अन्त है। उदयपुर और मारवाड़ के इतिहास में भी आत्म गौरव की ऐसी घटनाएँ नहीं मिलतीं।

बादशाही सिपाही सारन्धा का यह साहस और धैर्य देखकर दंग रह गये। सरदार ने आगे बढ़कर कहा—रानी साहबा! खुदा गवाह है, हम सब आपके गुलाम हैं! आपका जो हुक्म हो, उसे ब सरोचश्म बजा लायेंगे।

सारन्धा ने कहा—अगर हमारे पुत्रों में से कोई जीवित हो, तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कहकर उसने वही तलवार अपने हृदय में चुभा ली। जब वह अचेत होकर धरती पर गिरी तो उसका सिर राजा चम्पतराय की छाती पर था।



आत्माराम

(१)

वेंदो ग्राम में महादेव सोनार एक सुविख्यात आदमी था। वह अपने सायवान में प्रातः से सन्ध्या तक अँगीठी के सामने बैठा हुआ खटखट किया करता था। यह लगातार ध्वनि सुनने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारण वह बन्द हो जाती, तो जान पड़ता था, कोई चीज गायब हो गई है। वह नित्य प्रति एक बार प्रातःकाल अपने तोते का पिंजरा लिये कोई भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाता था। उस धुँधले प्रकाश में उसका जर्जर शरीर, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर देखकर किसी अपरिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था। ज्यों ही लोगों के कानों में आवाज आती—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' लोग समझ जाते कि भोर हो गया।

महादेव का पारिवारिक जीवन सुखमय न था। उसके तीन पुत्र थे, तीन बहुएँ थीं, दर्जनों नाती पोते थे, लेकिन उसके बोझ को हल्का करनेवाला कोई न था। लड़के कहते—जब तक दादा जीते हैं, हम जीवन का आनन्द भोग लें, फिर तो यह ढोल गले पड़ेगा ही। बेचारे महादेव को कभी-कभी निराहार ही रहना पड़ता। भोजन के समय उसके घर में साम्यवाद का ऐसा गगनभेदी निर्घोष होता कि वह भूखा ही उठ आता और नारियल का हुक्का पीता हुआ सो जाता। उसका व्यावसायिक जीवन और भी अशान्तिकारक था। यद्यपि वह अपने काम में निपुण था, उसकी खटाई औरों से कहीं ज्यादा शुद्धिकारक और उसकी रासायनिक क्रियाएँ कहीं ज्यादा कष्टसाध्य थीं, तथापि उसे आये दिन शक्की और धैर्यशून्य प्राणियों के अपशब्द सुनने पड़ते थे, पर महादेव अविचलित गाम्भीर्य से सिर झुकाये सब कुछ सुना करता। ज्यों ही यह कलह शान्त होता, वह अपने तोते की ओर देखकर पुकार उठता—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।' इस मन्त्र के जपते ही उसके चित्त को पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जाती थी।

(२)

एक दिन संयोगवश किसी लड़के ने पिंजरे का द्वार खोल दिया। तोता उड़ गया। महादेव ने सिर उठाकर जो पिंजरे की ओर देखा, तो उसका कलेजा सन्न से हो गया। तोता कहाँ गया! उसने फिर पिंजरे को देखा, तोता गायब था। महादेव घबराकर उठा और इधर उधर खपरैलों पर निगाह दौड़ाने लगा। उसे संसार में कोई वस्तु प्यारी थी, तो वह यही तोता था। लड़के वालों, नाती पोतों से उसका जी भर गया था। लड़कों की चुलबुल से उसके काम में विघ्न पड़ता था, बेटों से उसे प्रेम न था, इसलिए नहीं कि वे निकम्मे थे, बल्कि इसलिए कि इनके कारण वह अपने आनन्ददायी कुल्हड़ों की नियमित संख्या से वंचित रह जाता था। पड़ोसियों से उसे चिढ़ थी, इसलिए कि वह उसकी अँगीठी से आग निकाल ले जाते थे। इन समस्त विघ्नबाधाओं से उसके लिए कोई पनाह थी, तो वह यही तोता था। इससे उसे किसी प्रकार का कष्ट न होता था। वह अब उस अवस्था में था, जब मनुष्य को शान्तिभोग के सिवा और कोई इच्छा नहीं रहती।

तोता एक खपरैल पर बैठा था। महादेव ने पिंजरा उतार लिया और उसे दिखाकर कहने लगा—'आ, आ, सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।' लेकिन गाँव और घर के लड़के एकत्र होकर चिल्लाने और तालियाँ बजाने लगे, ऊपर से कौवों ने काँव काँव की रट लगाई। तोता उड़ा और गाँव से बाहर निकल कर एक पेड़ पर जा बैठा। महादेव खाली पिंजरा लिये उसके पीछे दौड़ा, हाँ दौड़ा। लोगों को उसकी द्रुतगामिता पर अचम्भा हो रहा था। मोह की इससे सुन्दर, इससे सजीव, इससे भावमय कल्पना नहीं की जा सकती।

दोपहर हो गया था। किसान लोग खेतों से चले आ रहे थे, उन्हें विनोद का अच्छा अवसर मिला। महादेव को चिढ़ाने में सभी को मजा आता था, किसी ने कंकर फेंके, किसी ने तालियाँ बजाईं, तोता फिर उड़ा और वहाँ से दूर ग्राम के बाग में एक पेड़ की फुनगी पर जा बैठा। महादेव फिर खाली पिंजरा लिये मेंढक की भाँति उचकता हुआ चला। बाग में पहुँचा, तो पैर के तलुओं से आग निकल रही थी, सिर चक्कर खा रहा था। जब ज़रा सावधान हुआ, तो फिर पिंजरा उठाकर कहने लगा, 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता'।

तोता फुनगी से उतरकर नीचे की एक डाल पर आ बैठा, किन्तु महादेव की ओर सशंक नेत्रों से ताक रहा था। महादेव ने समझा—डर रहा है। वह पिंजरे को छोड़कर आप एक दूसरे पेड़ की आड़ में छिप गया। तोते ने चारों ओर ग़ौर से देखा, निश्शंक हो गया, उतरा और आकर पिंजरे के ऊपर बैठ गया। महादेव का हृदय उछलने लगा। 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' का मन्त्र जपता हुआ धीरे धीरे तोते के समीप आया, और लपका कि तोते को पकड़ लें, किन्तु तोता हाथ न आया, फिर पेड़ पर जा बैठा।

साँझ तक यही हाल रहा। तोता कभी इस डाल पर जाता, कभी उस डाल पर। कभी पिंजरे पर आ बैठता, कभी पिंजरे के द्वार पर बैठ अपने दाना-पानी की प्यालियों को देखता, फिर उड़ जाता। बुड्ढा अगर मूर्तिमान मोह था, तो तोता मूर्तिमती माया। यहाँ तक कि शाम हो गई, माया और मोह का यह संग्राम अन्धकार में विलीन हो गया।

(३)

रात हो गई। चारों ओर निविड़ अन्धकार छा गया। तोता न-जाने पत्तों में कहाँ छिपा बैठा था। महादेव जानता था कि रात को तोता कहीं उड़कर नहीं जा सकता और न पिंजरे ही में आ सकता है, तिसपर भी वह इस जगह से हिलने का नाम न लेता था, आज उसने दिन भर कुछ नहीं खाया। रात के भोजन का समय भी निकल गया, पानी की एक बूँद भी उसके कण्ठ में न गई, लेकिन उसे न भूख थी, न प्यास। तोते के बिना उसे अपना जीवन निस्सार, शुष्क और सूना जान पड़ता था। वह दिन रात काम करता था, इसलिए कि यह उसकी अन्त प्रेरणा थी, जीवन के और काम इसलिए करता था कि आदत थी। इन कामों में उसे अपनी सजीवता का लेशमात्र भी ज्ञान न होता था। तोता ही वह वस्तु था, जो उसे चेतना की याद दिलाता था। उसका हाथ से जाना जीव का देहत्याग करना था।

महादेव दिन-भर का भूखा प्यासा, थका-माँदा, रह रहकर, झपकियाँ ले लेता था, किन्तु एक क्षण में फिर चौंककर आँख खोल देता और उस विस्तृत अन्धकार में उसकी आवाज़ सुनाई देती—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता।'

आधी रात गुजर गई थी। सहसा वह कोई आहट पाकर चौंका, तो देखा

कि दूसरे एक वृक्ष के नीचे एक धुँधला दीपक जल रहा है और कई आदमी बैठे हुए आपस में कुछ बातें कर रहे हैं। वह सब चिलम पी रहे थे। तमाखू की महक ने उसे अधीर कर दिया। उच्च स्वर से बोला—'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता' और उन आदमियों की ओर चिलम पीने चला, किन्तु जिस प्रकार बन्दूक की आवाज़ सुनते ही हिरन भाग जाते हैं, उसी प्रकार उसे आते देख वह सब के-सब उठकर भागे। कोई इधर गया, कोई उधर। महादेव चिल्लाने लगा—'ठहरो—ठहरो!' एकाएक उसे ध्यान आ गया, यह सब चोर हैं। वह ज़ोर से चिल्ला उठा—'चोर-चोर, पकड़ो, पकड़ो!'—चोरों ने पीछे फिरकर भी न देखा।

महादेव दीपक के पास गया, तो उसे एक कलशा रखा हुआ मिला। मोरचे से काला हो रहा था। महादेव का हृदय उछलने लगा। उसने कलशे में हाथ डाला तो मोहरें थीं। उसने एक मोहर बाहर निकाली और दीपक के उजाले में देखा—हाँ, मोहर थी। उसने तुरन्त कलशा उठा लिया, दीपक बुझा दिया और पेड़ के नीचे छिपकर बैठ रहा। साहु से चोर बन गया।

उसे फिर शंका हुई, ऐसा न हो, चोर लौट आयें और मुझे अकेला देख कर मोहरें छीन लें। उसने कुछ मोहरें कमर में बाँधीं, फिर एक सूखी लकड़ी से जमीन की मिट्टी हटाकर कई गड्ढे बनाये, उन्हें मोहरों से भरकर मिट्टी से ढँक दिया।

(४)

महादेव के अन्त नेत्रों के सामने अब एक दूसरा ही जगत् था, चिन्ताओं और कल्पनाओं से परिपूर्ण। यद्यपि अभी कोष के हाथ से निकल जाने का भय था, पर अभिलाषाओं ने अपना काम शुरू कर दिया। एक पक्का मकान बन गया, सराफे की एक भारी दूकान खुल गई, निज सम्बन्धियों से फिर नाता जुड़ गया, विलास की सामग्रियाँ एकत्र हो गईं, तब तीर्थयात्रा करने चले और वहाँ से लौटकर बड़े समारोह से यज्ञ-ब्रह्मभोज हुआ। इसके पश्चात् एक शिवालय और कुआँ बन गया, एक उद्यान भी आरोपित हो गया और वहाँ वह नित्य प्रति कथा पुराण सुनने लगा, साधु सन्तों का आदर-सत्कार होने लगा।

अकस्मात् उसे ध्यान आया, कहीं चोर आ जायँ तो मैं भागूँगा क्योंकर। उसने परीक्षा करने के लिए कलशा उठाया और दो सौ पग तक बेतहाशा भागा हुआ चला गया। जान पड़ता था, उसके पैरों में पर लग गये हैं। चिन्ता शान्त हो गई। इन्हीं कल्पनाओं में रात व्यतीत हो गई। उषा का आगमन हुआ, हवा जगी, चिड़ियाँ गाने लगीं। सहसा महादेव के कानों में आवाज़ आई—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरन में चित्त लागा।'

यह बोल सदैव महादेव की जिह्वा पर रहता था, दिन में सहस्रों ही बार ये शब्द उसके मुख से निकलते थे, पर उसका धार्मिक भाव कभी उसके अन्तःकरण को स्पर्श न करता था। जैसे किसी बाजे से राग निकलता है, उसी प्रकार उसके मुँह से यह बोल निकलता था, निरर्थक और प्रभावशून्य। तब उसका हृदय रूपी वृक्ष पत्र पल्लव विहीन था। यह निर्मल वायु उसे गुञ्जारित न कर सकती थी, पर अब उस वृक्ष में कोपलें और शाखाएँ निकल आई थीं। इस वायु प्रवाह से वह झूम उठा—गुञ्जित हो गया।

अरुणोदय का समय था। प्रकृति एक अनुरागमय प्रकाश में डूबी हुई थी। उसी समय तोता परों को जोड़े-ऊँची डाली से उतरा, जैसे आकाश से कोई तारा टूटे, और आकर पिंजरे में बैठ गया। महादेव प्रफुल्लित होकर दौड़ा और पिंजरे को उठाकर बोला—आओ आत्माराम, तुमने कष्ट तो बहुत दिया, पर मेरा जीवन भी सुफल कर दिया। अब तुम्हें चाँदी के पिंजरे में रखूँगा और सोने से मढ दूँगा—उसके रोम रोम से परमात्मा के गुणानुवाद की ध्वनि निकलने लगी। प्रभु, तुम कितने दयावान् हो, यह तुम्हारा असीम वात्सल्य है, नहीं तो मुझ जैसा पापी, पतित प्राणी, कब इस कृपा के योग्य था। इन पवित्र भावों से उसकी आत्मा विह्वल हो गई, वह अनुरक्त होकर बोल उठा—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरण में चित्त लागा।'

उसने एक हाथ में पिंजरा लटकाया, बगल में कलशा दबाया और घर चला।

(५)

महादेव घर पहुँचा, तो अभी कुछ अँधेरा था। रास्ते में एक कुत्ते के सिवाय और किसी से भेंट न हुई और कुत्ते को मोहरों से विशेष प्रेम नहीं होता। उसने कलशे को एक नाँद में छिपा दिया और उसे कोयले से अच्छी तरह ढककर अपनी कोठरी में रख आया। जब दिन निकल आया, तो वह सीधे पुरोहितजी के घर जा पहुँचा। पुरोहितजी पूजा पर बैठे सोच रहे थे—कल ही मुकदमे की पेशी है और अभी तक हाथ में कौड़ी भी नहीं, जजमानों में कोई साँस भी नहीं लेता। इतने में महादेव ने पालागन किया। पण्डितजी ने मुँह फेर लिया, यह अमंगलमूर्ति कहाँ से आ पहुँची, मालूम नहीं दाना भी मयस्सर होगा या नहीं। रुष्ट होकर पूछा—क्या है जी, क्या चाहते हो, जानते नहीं कि हम इस बेला पूजा पर रहते हैं?

महादेव ने कहा—महाराज, आज मेरे यहाँ सत्यनारायन की कथा है।

पुरोहितजी विस्मित हो गये, कानों पर विश्वास न हुआ। महादेव के घर पर कथा होना उतनी ही असाधारण घटना थी, जितनी अपने घर से किसी भिखारी के लिए भीख निकालना। पूछा—आज क्या है?

महादेव बोला—कुछ नहीं, ऐसी ही इच्छा हुई कि आज भगवान् की कथा सुन लूँ।

प्रभात ही से तैयारी होने लगी। बेंदो और अन्य निकटवर्ती गाँवों में सुपारी फिरी। कथा के उपरान्त भोज का भी नेवता था। जो सुनता, आश्चर्य करता—यह आज रेत में दूब कैसे जमी?

सन्ध्या समय जब सब लोग जमा हो गये, पण्डितजी अपने सिंहासन पर विराजमान हुए, तो महादेव खड़ा होकर उच्चस्वर से बोला—भाइयो, मेरी सारी उम्र छल-कपट में कट गई। मैंने न जाने कितने आदमियों को दगा दिया, कितना खरे को खोटा किया, पर अब भगवान् ने मुझपर दया की है, वह मेरे मुँह की कालिख को मिटाना चाहते हैं। मैं आप सभी भाइयों से ललकारकर कहता हूँ कि जिसका मेरे जिम्मे जो कुछ आता हो, जिसकी

जमा मैंने मार ली हो, जिसके चोखे माल को खोटा कर दिया हो, वह आकर अपनी एक एक कौड़ी चुका ले, अगर कोई यहाँ न आ सका हो, तो आप लोग उससे जाकर कह दीजिए, कल से एक महीने तक जब जी चाहे आवे और अपना हिसाब चुकता कर ले, गवाही साखी का काम नहीं।—सब लोग सन्नाटे में आ गये। कोई मार्मिक भाव से सिर हिलाकर बोला—हम कहते न थे? किसी ने अविश्वास से कहा—क्या खाके भरेगा? हजारों का टोटल हो जायगा।

एक ठाकुर ने ठठोली की—और जो लोग सुरधाम चले गये?

महादेव ने उत्तर दिया—उनके घरवाले तो होंगे।

किन्तु इस समय लोगों को वसूली की इतनी इच्छा न थी, जितनी यह जानने की कि इसे इतना धन मिल कहाँ से गया। किसी को महादेव के पास आने का साहस न हुआ। देहात के आदमी थे, गड़े मुर्दे उखाड़ना क्या जानें। फिर प्राय लोगों को याद भी न था कि उन्हें महादेव से क्या पाना है और ऐसे पवित्र अवसर पर भूल-चूक हो जाने का भय उनका मुँह बन्द किये हुए था। सबसे बड़ी बात यह थी कि महादेव की साधुता ने उन्हें वशीभूत कर लिया था।

अचानक पुरोहितजी बोले—तुम्हें याद है, मैंने तुम्हे एक कंठा बनाने के लिए सोना दिया था और तुमने कई माशे तौल में उड़ा दिये थे।

महादेव—हाँ, याद है, आपका कितना नुकसान हुआ होगा?

पुरोहित—५०) से कम न होगा।

महादेव ने कमर से दो मोहरें निकालीं और पुरोहितजी के सामने रख दीं।

पुरोहित की लोलुपता पर टीकाएँ होने लगीं। यह बेईमानी है, बहुत तो दो-चार रुपये का नुकसान हुआ होगा। बेचारे से ५०) ऐंठ लिये। नारायण का भी डर नहीं। बनने को पंडित, पर नीयत ऐसी खराब! राम राम!

लोगों को महादेव से एक श्रद्धा-सी हो गई। एक घंटा बीत गया, पर उन सहस्रों मनुष्यों में से एक भी न खड़ा हुआ। तब महादेव ने फिर कहा—मालूम होता है, आप लोग अपना-अपना हिसाब भूल गये हैं, इसलिए आज कथा होने दीजिए, मैं एक महीने तक आपकी राह देखूँगा। इसके पीछे

तीर्थ यात्रा करने चला जाऊँगा। आप सब भाइयों से मेरी विनती है कि आप मेरा उद्धार करें।

एक महीने तक महादेव लेनदारों की राह देखता रहा। रात को चोरों के भय से नींद न आती थी। अब वह कोई काम न करता। शराब का चसक भी छूटा। साधु अभ्यागत जो द्वार पर आ जाते, उनका यथायोग्य सत्कार करता। दूर दूर उसका सुयश फैल गया। यहाँ तक कि महीना पूरा हो गया और एक आदमी भी हिसाब चुकाने नहीं आया। अब महादेव को ज्ञात हुआ कि संसार में कितना धर्म, कितना सद्व्यवहार है। अब उसे मालूम हुआ कि संसार बुरों के लिए बुरा है, पर अच्छों के लिए अच्छा है।

(६)

इस घटना को हुए ५० वर्ष बीत चुके हैं। आप वेंदो जाइए, तो दूर ही से एक सुनहला कलश दिखाई देता है। वह ठाकुरद्वारे का कलश है। उससे मिला हुआ एक पक्का तालाब है, जिसमें खूब कमल खिले रहते हैं। उसकी मछलियाँ कोई नहीं पकड़ता। तालाब के किनारे एक विशाल समाधि है। यही आत्माराम का स्मृति चिह्न है। उसके सम्बन्ध में विभिन्न किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कोई कहता है—उनका रत्नजटित पिंजरा स्वर्ग को चला गया, कोई कहता है—वह 'सत्त गुरुदत्त' कहते हुए अन्तर्धान हो गये, पर यथार्थ यह है कि उस पक्षीरूपी चन्द्र को किसी बिल्लीरूपी राहु ने ग्रस लिया। लोग कहते हैं, आधी रात को अभी तक तालाब के किनारे आवाज आती है—

'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता,
राम के चरन में चित्त लागा।'

महादेव के विषय में भी कितनी जन-श्रुतियाँ हैं। उनमें सबसे मान्य यह है कि आत्माराम के समाधिस्थ होने के बाद वह कई सन्यासियों के साथ हिमालय चले गये और वहाँ से लौटकर न आये। उनका नाम आत्माराम प्रसिद्ध हो गया।

श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए०

आप मध्यप्रदेश के निवासी और प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका 'सरस्वती' के सम्पादक थे। आपकी शैली बहुत ही प्रौढ़ विचारशील और कटाक्ष पूर्ण है। आपने प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य का गहरा अध्ययन किया है। 'साहित्य विमर्श' में आपने संसार-साहित्य की मार्मिक विवेचना की है। आप सुकवि भी हैं।

मैं बरामदे में टहल रहा था। इतने में मैंने देखा कि विमला दासी अपने आँचल के नीचे एक प्रदीप लेकर बड़ी भाभी के कमरे की ओर जा रही है। मैंने पूछा—क्या री! यह क्या है? वह बोली—झलमला। मैंने फिर पूछा—इससे क्या होगा? उसने उत्तर दिया—नहीं जानते हो बाबू, आज तुम्हारी बड़ी भाभी पण्डितजी की बहू की सखी होकर आई हैं, इसी लिए मैं उन्हें झलमला दिखाने जा रही हूँ।

तब तो मैं भी किताब फेंककर घर के भीतर दौड़ गया। दीदी से जाकर कहने लगा—दीदी, थोड़ा तेल तो दो।

दीदी ने कहा—जा, अभी मैं काम में लगी हूँ।

मैं निराश होकर अपने कमरे में लौट आया। फिर मैं सोचने लगा—यह अवसर जाने न देना चाहिए, अच्छी दिल्लगी होगी। इधर उधर देखने लगा। इतने में मेरी दृष्टि एक मोमबत्ती के टुकड़े पर पड़ी। मैंने उसे उठा लिया और दियासलाई का बक्स लेकर भाभी के कमरे की ओर गया। मुझे देखकर भाभी ने पूछा—कैसे आये बाबू?—मैंने बिना उत्तर दिये ही मोमबत्ती के टुकड़े को जलाकर सामने रख दिया। भाभी ने हँसकर पूछा—यह क्या है? मैंने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—झलमला।

भाभी ने कुछ न कहकर मेरे हाथ पर पाँच रुपये रख दिये। मैं कहने लगा—भाभी, क्या तुम्हारे प्रेम के आलोक का इतना ही मूल्य है? भाभी ने हँसकर कहा—तो कितना चाहिए? मैंने कहा—कम से-कम एक गिनी। भाभी कहने लगीं—अच्छा, इसपर लिख दो, मैं अभी देती हूँ।

मैंने तुरन्त ही चाकू से मोमबत्ती के टुकड़े पर लिख दिया—'मूल्य एक गिनी।' भाभी ने गिनी निकालकर मुझे दे दी और मैं अपने कमरे में चला आया। कुछ दिनों बाद गिनी के खर्च हो जाने पर मैं यह घटना बिलकुल भूल गया।

(२)

८ वर्ष व्यतीत हो गये। मैं बी० ए०, एल एल० बी० होकर इलाहाबाद से घर लौटा। घर की वैसी दशा न थी जैसी आठ वर्ष पहले थी, न भाभी थीं, न विमला दासी ही। भाभी हम लोगों को सदा के लिए छोड़कर स्वर्ग चली गई थीं, और विमला कटङ्गी में खेती करती थी।

सन्ध्या का समय था। मैं अपने कमरे में बैठा न-जाने क्या सोच रहा था। पास ही कमरे में पड़ोस की कुछ स्त्रियों के साथ दीदी बैठी थीं। कुछ बातें हो रही थीं, इतने में मैंने सुना, दीदी किसी स्त्री से कह रही हैं—कुछ भी हो बहिन, मेरी बड़ी बहू घर की लक्ष्मी थी। उस स्त्री ने कहा—हाँ बहिन खूब याद आई, मैं तुमसे पूछनेवाली थी। उस दिन तुमने मेरे पास सखी का सन्दूक भेजा था न? दीदी ने उत्तर दिया—हाँ बहिन, बहू कह गई थी, उसे रोहिणी को दे देना। उस स्त्री ने कहा—उसमें सब तो ठीक था, पर एक विचित्र बात थी। दीदी ने पूछा—कैसी विचित्र बात? वह कहने लगी—उसे मैंने खोलकर एक दिन देखा तो उसमें एक जगह खूब हिफ़ाजत से रेशमी रूमाल में कुछ बँधा हुआ मिला। मैं सोचने लगी वह क्या है। कौतूहलवश उसे खोलकर मैंने देखा। बहिन, कहो तो उसमें भला क्या रहा होगा? दीदी ने उत्तर दिया—गहना रहा होगा। उसने हँसकर कहा—नहीं, गहना न था—वह तो एक अधजली मोमबत्ती का टुकड़ा था और उसपर लिखा हुआ था—'मूल्य एक गिनी।' क्षण-भर के लिए मैं ज्ञान शून्य हो गया, फिर अपने हृदय के आवेग को न रोककर मैं उस कमरे में घुस पड़ा और चिल्लाकर कहने लगा—वह मेरी है, मुझे दे दो! कुछ स्त्रियाँ मुझे देखकर भागने लगीं। कुछ इधर उधर देखने लगीं। उस स्त्री ने अपना सिर ढाँपते ढाँपते कहा—अच्छा बाबू, मैं कल उसे भेज दूँगी, पर मैंने रात को ही एक दासी भेजकर उस टुकड़े को मँगा लिया। उस दिन मुझसे कुछ नहीं खाया गया। पूछे जाने पर मैंने यह कहकर टाल दिया कि सिर में दर्द है। बड़ी देर तक इधर-उधर टहलता रहा। जब सब सोने के लिए गये तब मैं अपने कमरे में आया। मुझे उदास देखकर कमला पूछने लगी—सिर का

दर्द कैसा है ? पर मैंने कुछ उत्तर न दिया, चुपचाप जेब से मोमबत्ती को निकालकर उसे जलाया और उसे एक कोने में रख दिया।

कमला ने पूछा—यह क्या है ?

मैंने उत्तर दिया—झलमला।

कमला कुछ न समझ सकी। मैंने देखा कि थोड़ी देर में मेरे झलमले का क्षुद्र आलोक रात्रि के अन्धकार में विलीन हो गया।



श्रीमती शिवरानीदेवी

श्रीमती शिवरानीदेवी का जन्म १८९० ई० में फतेहपुर जिले के एक ग्राम में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। बचपन में कुछ विशेष शिक्षा तो नहीं पाई, पर अपने माता पिता से एक दृढ़ता और विशाल हृदयता पाई जो उनके जीवन की सबसे बड़ी निधियाँ हैं। विवाह आपका स्व० प्रेमचन्द से हुआ और उन्हीं की प्रेरणा से आपने कहानियाँ लिखना शुरू किया जिसमें से पहली रचना १९२७ ई० में प्रकाशित हुई। तबसे आप निरन्तर कहानियाँ लिखती जाती हैं। प्रधानत आप एक कहानी लेखिका हैं। आपकी कहानियाँ अधिकतर भारत के नारी-जीवन से ही सम्बन्ध रखती हैं और आपकी पात्रियाँ बड़ी दृढ़ चरित्र की तथा निर्भीक और वात्सल्यपूर्ण होती हैं। सामाजिक कुरीतियों के चित्रण में श्रीमती शिवरानीदेवी को बड़ी सफलता मिली है। सभी कहानियों के अन्दर किसी सामाजिक अवगुण के खिलाफ आवाज़ उठाई गई होती है। प्रस्तुत कहानी में ऐसा नहीं है। यह एक भावना प्रधान कहानी का उत्कृष्ट उदाहरण है।

आपकी कहानियों के दो संग्रह 'नारी हृदय' तथा 'कौमुदी' प्रकाशित हुए हैं।

बीती यादें

है कि तुम स्त्रियों पर शासन करना। बात दोनों की एक ही निकलती है। मतलब दोनों की एक है। फिर बाद को आकर आख़िर वही हुआ, जैसे कि होना चाहिए था। बाक़ी वही तू-तू मैं मैं की बात। शायद ख़ुदा के यहाँ सहनशीलता जब बँट रही थी, उस समय भी दो पुरुष मिलकर आपस में तू तू मैं-मैं ही करते रह गये होंगे।

पतिदेव महाशय बोले—तो उसमें तुम कौन तू तू मैं मैं करने में कम हो?—तो इसका मतलब यह कि जब ख़ुदा के यहाँ बँट रही थी सहनशीलता, तो उसे फ़िरिश्तों ने ही पाया होगा, क्योंकि यहाँ स्त्री-पुरुषों में तो किसी ने नहीं पाया।

महेशा—अच्छा साहब, मेरा क़िस्सा सुनिए, मैं क्यों नहीं आई। बाढ़ के लिए बिहार मशहूर जगह है। पानी इस क़दर बरसा, कि सड़कों पर नावें चलती थीं। उसमें जिस रोज़ पानी बरसा, उस रोज़ मेरे मायके में मेरे भाई और भावजों को ऐसी नींद आई थी, जैसी मौत की नींद हो। मौतवाली नींद कहूँ कि शराबी के नशेवाली। हम सब पानी में भींग गये। फिर भी किसी ने उठने का नाम न लिया। पानी में भीगने की वजह से जैसे सारी बदन ठंढी हो गई थी। मैंने चारपाई में पड़े पड़े अपनी भावज से खाने की तम्बाकू माँगी। शायद आँखें खोले तम्बाकू माँगी होती, तो कहीं और ठंढ लग जाती!—यही ख़याल रहा होगा। क्योंकि आँख बन्द ही थी मेरी। भावज तो वहाँ मौजूद नहीं थी। भाई को तो दो तीन आवाज़ देने के बाद, मेरे बड़े भाई बोले—अरे, तू देखती नहीं है सारे घर में पानी ही पानी तो भर गया है। भावज तेरी ऊपर है, छत पर। सब नालियाँ बन्द पड़ी हैं, और पानी चारों तरफ मकान में भरा हुआ है। मैंने यह सुन करके आँखें खोलीं। यह, वहाँ की घटना देखती हूँ, तो पानी पानी भरा हुआ है। वह तो, कहो, ऊँचा बरामदा था, नहीं तो मैं भी उतरा चली होती।

दूसरी तरफ़ के बराडे में पानी ही पानी था। सब सामान उसी में फैल गया था। मैंने घबराकर भैया से पूछा—आख़िर यह पानी कहाँ से आ गया है?

भाई बोले—अरे, पानी बरसा, बेवक़ूफ़, और कहाँ से आ गया है!

भादों का महीना था। महेशा अपने मैके गई। दो तीन बच्चों को पति के पास छोड़कर वह अकेली गई। वहाँ गई तो थी चार-पाँच रोज का वादा करके, लग गये तेरह दिन। जब वह तेरह दिन बाद घर आई, तो पतिदेव बोले—भन्नाये हुए बैठे थे—क्यों जी, तुम्हारी क्या आदत है। जाती हो तीन दिन को कहके, लगा देती हो तेरह दिन! महेशा उनके इस तरह नादिरशाही हुक्म पर बोली—साहब मैं गई थी! मैं ही तो अकेली गई थी, तेरह दिन नहीं, तेरह महीने लगा देती!

पति—अरे बाबा, तो तुम अपने बच्चे छोड़ गई थीं मेरे मत्थे। कैदी बनाकर मुझे गई थीं।

महेशा—बच्चे मैंने कहीं से लाकर पटक दिये हैं? बच्चे! 'तुम्हारे बच्चे! तुम्हारे बच्चे!' बच्चों का मैंने ही ठेका ले रखा है?

पति—तो फिर कह तो गईं होतीं कि मैं बच्चे ही पालता बैठे बैठे!

महेशा—जब मैं काम नहीं करती थी, तो मेरे ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं। जब मैं यहाँ थी ही नहीं—तो मेरे ऊपर कोई ज़िम्मेदारी भी नहीं!

जब महेशा बहुत गर्मा चुकी तो पतिदेव कुछ नर्म पड़े। बोले—महेशा, तुम नहीं जानती हो, बच्चे पुरुषों के पालने की चीज नहीं। तुम्हारे चले जाने की वजह से बच्चों को भी तकलीफ़ हुई, मुझे भी। और फिर तुम्हीं ने तो सारे घर का काम अपने जिम्मे लेकर मुझे निकम्मा बना दिया है! एक तरह से, दफ्तर के अलावा मुझसे और कोई काम हो ही नहीं सकता। इस पर डर भी रहा था कि बच्चे शिकायत करेंगे कि हमें तकलीफ़ हुई, और हमें पीटा। यह भी डर ऊपर से था।

जब पतिदेव अपनी परवशता बता चुके, तब महेशा ने भी अपने न आने का कारण बताया, और बोली, कि आखिर अगर शुरू से ही तुम साधारण तरह से बात करते, तो क्यों यह उलझन होती हम दोनों में। एक दूसरे से क्यों हम उलझ पड़ते। पुरुषों का स्वभाव कुछ लठ सा होता ही है, और क्यों न हो! उनकी छठी की घुटी में यह डालकर पिला दिया जाता

फिर आजकल इन लोगों का नियम हो गया है, उसी तरह नौकर इन लोगों को चाहते भी तो नहीं हैं।

मैं बोली—भैया, वह ज़माना ही दूसरा था। अब मा बाप का लिहाज़ तो करते ही नहीं, नौकरों का लिहाज़ कौन करता है!

इन सिलसिलों में बात हो रही थी कि उसी में भाई ने कहा—

'तुम को याद है न, जब एक नलका बूआ ब्राह्मणी थी। उसके लिए हम पैसा चोरी करते थे। जिसके पीछे अम्मा ने एक दफ़ा हम दोनों को पीटा था।'

मैं बोली—व्यर्थ ही पीटा था अम्मा ने। कौन हमने अपने लिए पैसे चुराये थे।

भाई—आख़िर नलका बूआ से हम लोगों को क्या स्नेह था। वह बुड्ढी औरत।

अरे भैया—मैं बोली—वह बड़ी अच्छी अच्छी बातें बताती थी। मैं तो उन दिनों को अब याद करती हूँ, सोचती हूँ, वही दिन अगर फिर आ जावे, बड़ा अच्छा होवा।

भाई बोले—अरे पागल है, वे दिन आवे हैं कहीं से। गये दिन कहीं लौटकर आते हैं फिर से!

मैं बोली—पहले के ज़माने की औरतों का किस्सा नलका बूआ बता के जाती थीं, किस समय स्त्रियाँ चरखा कातती थीं, किस समय गोबर पाथती थीं, किस समय खाना पकाती थीं, किस समय क्या करती थीं, दिनभर की दिनचर्या वह बताती थीं।

भैया बोले—अरे पागल, कोई कहानी तो रहती नहीं थी।

मैं बोली—अरे भैया, कहानी न होते हुए भी, कहानी से ज्यादा मज़ा आता था। बीती हुई बातें कहानी से भी ज़्यादे मनोरंजक हो जाती हैं।

भैया बोले—अरे भाई, वजह यह है, न पहली सी आदमी की उम्र रह जाय, न पहली सी कहानी। क्योंकि जो उम्र बीत गई, वह तो वापिस नहीं आती। उसी की कहानी सुन करके इन्सान का मनोरंजन होता है।

मैं बोली—भैया, वही समय फिर आ जाय, तो मैं तो बड़ी ख़ुश हूँ।

भैया बोले—अरे बेवकूफ़, वह समय आ कैसे जाय! जबरदस्ती! सब

कुछ रहते हुए वह समझ तो नहीं रहेगी, और न वह उत्साह रहेगा। जब ये दो चीजें वे नहीं हैं, तो कैसे वह समय आ सकता है!

वह नौकर धीरे से आकर—फिर भी वहीं आकर—हम लोगों की बातें सुन रहा था। और यही सुनते-सुनते उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। मैं बोली—चन्दर भैया, तू क्यों रोने लगा?

बोला—कुछ नहीं, बिटिया, सोचता हूँ कि इस ज़िन्दगी में मेरी अँधियारी रात है। जैसे आप लोग बैठे अपने बचपन की कहानी कह रहे हैं, मेरे तो तीन पन बीत चुके, चौथा है। उन्हीं की याद करते करते सोचता हूँ कि अब जीवन है क्या! हरियाली तो कभी आने की नहीं। सुनसान निर्जन। यही जीवन का लेखा हो गया है। अब तो मैं मालिक से यही प्रार्थना करता हूँ, कि जब तक जिन्दा रहूँ तब तक इन्हीं के दुआरे पड़ा रहूँ। जो कुछ मुझसे सेवा हो सके, करता रहूँ।

यही कहता हुआ वह भैया के पैरों पर गिरना चाहा। भैया खुद रो पड़े।

बूढ़ा बोला—सरकार आप काहे का रोवत हैं!

भैया बोले—अरे भाई, यही अँधियारी रातें हम लोगों के लिए भी तो तैयार हो रही हैं।

महेश्वा का पति सुनकर बोला—सच है बूढ़े का कहना। जो दुनिया में जन्म लेता है, वह एक दिन सबके लिए वही अँधियारी रात है।

यही कहते कहते महेशा और महेश्वा के पति दोनों रो पड़े। बोले—जो जन्म लेता है, एक दिन अँधियारा उसके लिए ज़रूर आता है।⊛

⊛ सच्ची घटना के आधार पर।

कुछ रहते हुए वह समझ तो नहीं रहेगी, और न वह उत्साह रहेगा। जब ये दो चीजें वे नहीं हैं, तो कैसे वह समय आ सकता है!

वह नौकर धीरे से आकर—फिर भी वहीं आकर—हम लोगों की बातें सुन रहा था। और यही सुनते-सुनते उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। मैं बोली—चन्दर भैया, तू क्यों रोने लगा?

बोला—कुछ नहीं, बिटिया, सोचता हूँ कि इस ज़िन्दगी में मेरी अँधियारी रात है। जैसे आप लोग बैठे अपने बचपन की कहानी कह रहे हैं, मेरे तो तीन पन बीत चुके, चौथा है। उन्हीं की याद करते करते सोचता हूँ कि अब जीवन है क्या! हरियाली तो कभी आने की नहीं। सुनसान निर्जन। यही जीवन का लेखा हो गया है। अब तो मैं मालिक से यही प्रार्थना करता हूँ, कि जब तक ज़िन्दा रहूँ तब तक इन्हीं के दुआरे पड़ा रहूँ। जो कुछ मुझसे सेवा हो सके, करता रहूँ।

यही कहता हुआ वह भैया के पैरों पर गिरना चाहा। भैया खुद रो पड़े।

बूढ़ा बोला—सरकार आप काहे का रोवत हैं!

भैया बोले—अरे भाई, वही अँधियारी रातें हम लोगों के लिए भी तो तैयार हो रही हैं।

महेशा का पति सुनकर बोला—सच है बूढे का कहना। जो दुनिया में जन्म लेता है, वह एक दिन सबके लिए वही अँधियारी रात है।

यही कहते कहते महेशा और महेशा के पति दोनों रो पड़े। बोले—जो जन्म लेता है, एक दिन अँधियारा उसके लिए जरूर आता है।*

श्री जैनेन्द्रकुमार

आपका जन्म १९०५ में एक प्रतिष्ठित जैन परिवार में हुआ। आपने सबसे पहिले १९२८ में कहानियाँ लिखनी प्रारम्भ कीं, जिन्हें जनता ने बहुत आदर से लिया। सचमुच ही कहानी कहने की आपमें असाधारण प्रतिभा है। हिन्दी के प्रमुख कलाकारों में इस समय आपका स्थान बहुत ऊँचा है। भाषा का इतना सुन्दर गठाव भी कम ही देखने में आता है। आप मुख्यतया मनोवैज्ञानिक कहानियों के लेखक हैं। इस रूप में आप बेजोड़ हैं।

आपके कई उपन्यास 'परख', 'सुनीता', 'त्याग पत्र', 'कल्याणी' तथा कहानी संग्रह जैसे 'वातायन', 'एक रात', 'नीलमदेश की राजकन्या', दो निबन्ध और विचार संग्रह 'जैनेन्द्र के विचार' और 'प्रस्तुत प्रश्न' प्रकाशित हो चुके हैं।

कहानीकार, उपन्यास लेखक और विचारक के रूप में आप हिन्दी भाषा के लिए एक स्थायी देन हैं।

बाहुबली

बहुत पहले की बात कहते हैं। तब दो युगों का सन्धि-काल था। भोग-युग के अरत में से कर्म युग फूट रहा था। भोग-काल में जीवन मात्र भोग था। पाप पुण्य की रेखा का उदय न हुआ था। कुछ निषिद्ध न था, न विधेय। अतः पाप असभव था, पुण्य अनावश्यक। जीवन बस रहना था। मनुष्य इतर प्रकृति के प्रति अपने आपमें स्वत्व का अनुभव नहीं करने लगा था और प्रकृति भी उसके प्रति पूर्ण वदान्य थी। वृक्ष कल्पवृक्ष थे। पुरुष तन ढाँकने को वल्कल उनसे पा लेता, पेट भरने को फल। उसकी हर बात प्रकृति ओढ लेती। विवाह न था और परस्पर सम्बन्धों में नातों का आरोप न हुआ था। स्त्री, माता, बहन, पत्नी, पुत्री न थी वह मात्र मादा थी। और पुरुष नर। अनेक थलचर प्राणियों में मनुष्य भी एक था और उन्हीं की भाँति जीता था।

उस युग के तिरोभाव में से नवीन युग का आविर्भाव हो रहा था। प्रकृति अपने दाक्षिण्य में मानों कृपण होती लगती थी। उस समय विवाह ढूँढा गया। परिवार बनने लगे और परिवारों से समाज। नियम-क़ानून भी उठे। 'चाहिए' का प्रादुर्भाव हुआ और मनुष्य को ज्ञात हुआ कि जीना रहना नहीं है, जीना करना है। भोग से अधिक जीवन कर्म है और प्रकृति को ज्यों का त्यों लेकर बैठने से नहीं चलेगा। कुछ उसपर सशोधन, परिवर्तन, कुछ उसपर अपनी इच्छा का आरोप भी आवश्यक है। बीज उगाना होगा। कपड़े बनाने होंगे, जीवन सचालन के लिए नियम स्थिर करने होंगे और जीवन समृद्धि के निमित्त उपादानों का भी निर्माण और सग्रह कर लेना होगा। अकेला व्यक्ति अपूर्ण है, अक्षम है, असत्य है। सहयोग स्थापित करके परिवार, नगर, समाज बनाकर पूर्णता, क्षमता और सत्यता को पाना होगा।

ठीक जब की बात कहते हैं तब व्यक्ति व्यष्टि सत्ता से समष्टि सिद्धि की ओर बढ चला था। राजा जैसी वस्तु की आवश्यकता हो चली थी। पर राजा जो राजत्व की सस्था पर न खड़ा हो। यह तो पीछे से हुआ कि राजत्व सस्था बनी और शिक्षा और न्याय, विभाग रूप में, शासन से पृथक् हुए।

नगर बन चले थे और जीवन-यापन नितान्त स्वाभाविक कर्म न रह गया था। उसके लिए उद्यम की आवश्यकता थी।

(२)

इस भाँति प्रथम राज्य बना और प्रथम राजा हुए श्री आदिनाथ। उनके दो पुत्र थे, दो पुत्रियाँ। पुत्र भरत और बाहुबली, पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुंदरी।

अवस्था के चतुर्थ खण्ड में ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर श्री आदिनाथ ने कहा—पुत्र, अब तुम यह पद लो। मुझे अब दीक्षा लेनी चाहिए।

भरत ने कहा—महाराज!

आदिनाथ ने कहा—तुमको पहला चक्रवर्ती होना है। इस राज्य से बाहर भी बहुत से प्रान्त हैं, जिनको व्यवस्थित शासन तुम्हें देना है। मैं तो लोगों के मान होने से उनका मुखिया हो गया था। उन्होंने मुझे राजा कहने में सुख मिला। मैंने कहा, अच्छा! लेकिन तुमको साम्राज्य बनाना है। अपने लिए नहीं, लोगों में एकता लाने के लिए। तुमको विजय प्रसार का कर्तव्य भी करना होगा।

भरत ने कहा—महाराज, आप दीक्षा क्या लेंगे। मैं विजयध्वज फहरा न आऊँ और अपने को समय न समझ लूँ, तब तक आप अपना आशीर्वाद मुझपर से न उठायें।

आदिनाथ ने कहा—पुत्र, अब समय आता जाता है कि राजा शासक अधिक हो, प्रजा का हमजोली उतना न हो। राज्यैश्वर्य से युक्त राजा को देखकर प्रजा समझती है कि उसने कुछ पाया है। तब तक उसका चित्त शुद्ध नहीं होता। मैं तो प्रजा के निम्नातिनिम्न जन से अपना हमजोलीपन नहीं तज सकता। किन्तु तुम्हारे लिए यह अनिवार्य नहीं है। तुम राजपुत्र हो। मैं तो साधारण पिता का पुत्र हूँ और जिस पद से शासन की आशा है, उसके सर्वथा अयोग्य बन जाना चाहता हूँ। मुझे लोगों के दुःख में जाना चाहिए और मुझे उस मार्ग में से चलकर अपना कैवल्य पा लेना चाहिए।

भरत ने निरुत्तर होकर सिर झुका लिया।

अगले दिन आदिनाथ ने दीक्षा ले ली। समस्त वस्त्राभरण और नगर

त्यागकर वे निर्ग्रन्थ विहार कर गये। और भरत, चुप मन, जय यात्रा पर चल दिये।

पृथिवी के छहों खण्डों पर विजय स्थापित कर और बहुभाँति के मणि मुक्ता, हय गज और कन्या सुन्दरियों की भेंट से युक्त भरत धूम धाम के साथ नगर को लौटकर आये।

किन्तु जब भरत नगर में प्रवेश करने लगे तब विचित्र घटना हुई। चक्रवर्ती का शासन चक्र नगर के भीतर प्रविष्ट नहीं होता। प्रत्येक द्वार से नगर में प्रवेश करने के यत्न किये गये, किन्तु शासन-चक्र ने साथ न दिया। इसपर लोगों को बहुत अचरज हुआ। राजगुरु की शरण में जाकर इसके कारण के विषय में उन्होंने जिज्ञासा की। गुरु ने बताया कि इस नगर में एक व्यक्ति है जो अविजित है। उसपर जब तक विजय न पा ली जाय, तब तक चक्रवर्तित्व अखण्ड नहीं होता। और उस समय तक यह शासन चक्र नगर में प्रवेश न करेगा। राजगुरु ने यह भी बताया कि अभी तक जिन पर किसी ने विजय नहीं पाई है, ऐसे व्यक्ति राजकुमार बाहुबली हैं।

भरत ने पूछा—गुरुदेव, तब क्या बाहुबली से मुझे युद्ध करना होगा?

राजगुरु ने कहा—राजन्, तब तक चक्रवर्तित्व असिद्ध है।

भरत ने कहा—किन्तु मैं चक्रवर्ती नहीं होना चाहता।

राजगुरु ने कहा—राजर्षि, यह आपकी व्यक्तिगत इच्छा अनिच्छा का प्रश्न नहीं है। यह राजकारण का प्रश्न है।

भरत ने कहा—गुरुदेव, क्या भाई से भाई को लड़ना होगा?

गुरुदेव ने कहा—राजन्, राजकारण गहन है। राजकारण धर्मों में कौन भाई है, कौन भाई नहीं है?

भरत नतमस्तक हुए।

* * * *

पाँच युद्धों द्वारा शक्ति परीक्षण का निश्चय हुआ। दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध आदि, और अन्त में मल्लयुद्ध।

आरम्भ के चारों युद्धों में बिना प्रयास बाहुबली ही जयी हुए। बाहुबली इस विजय से विशेष उल्लसित नहीं दिखाई देते थे, न भरत विशेष उदास।

मल्लयुद्ध अन्तिम युद्ध था और उसके समय प्रजा की उत्सुकता इस भाई-भाई के द्वेष हीन युद्ध में बहुत बढ़ गई थी।

मल्लयुद्ध में कुछ देर के बाद बाहुबली ने भरत को दोनों हाथों पर ऊपर उठा लिया। इस समय दर्शकों के प्राण कण्ठ में आ बसे थे। वे प्रति-पल आशंका करने लगे कि चक्रवर्ती भरत अब धरती पर चित आ पड़ते हैं। किन्तु बाहुबली ने धीमे धीमे अपने हाथों को नीचे किया और भरत पृथिवी पर सावधान खड़े दिखाइ दिये। तदनन्तर नतशिर होकर बाहुबली ने दोनों हाथों से अपने बड़े भाइ के चरण छुए।

भरत ने भी बाहुबली को अपनी छाती से लगा लिया, कहा—बाहुबली, विजयी होओ। मुझे तुमपर गर्व है और मैं तुम्हारी विजय पर हर्षित हूँ। तुम सामर्थ्यशाली बनो।

बाहुबली ने कहा—यह आप क्या कहते हैं? आप ज्येष्ठ हैं, योग्य हैं और मैं एक क्षण के लिए भी राज्य नहीं चाहता।

भरत ने कहा—भाई बाहुबली, यह तुम्हारा है। तुम उसके विजेता हो, उसके पात्र हो। और मैं अपना हृदय दिखा सकूँ तो तुम जानो, मैं कितना प्रसन्न हूँ। तुम राजा बनो, मुझे अमात्य बनाओ, सेनापति बनाओ, अथवा जो चाहो, सेवा लो।

बाहुबली ने हाथ जोड़कर कहा—भाई, मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। इस विषय में आप राज्य पालन का कर्तव्य मुझपर न डालें। मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। मुझे राज्य आदि नहीं चाहिए।

भरत ने बहुत कहा परन्तु बाहुबली दीक्षा लेकर वन की ओर चले गये। भरत चुपचाप राज्य-रक्षा और राजत्व पालन में लग गये।

(३)

बाहुबल ने घोर तपश्चरण किया—अति दुर्द्धर्ष, अति कठोर, अति निर्मम। वर्षों वे एक पैर से खड़े रहे। महीनों निराहार यापन किये। सुदीर्घ काल तक अखण्ड मौन साधे रखा। बरसों बाहर की ओर आँख खोलकर देखा तक नहीं।

उनकी इस तपस्या की कीर्ति दिग्दिगन्त में फैल गई। देश देश से लोग उनके दर्शन को आने लगे। भक्तों की संख्या न थी। उनकी महिमा और पूजा का परिमाण न था।

किन्तु बाहुबली भक्तों और उनकी पूजा से विमुख होकर घोर से घोरतर निर्जन दुष्प्राप्य एकान्त में चले जाते थे। एक स्थान पर एक बार अडिग, एकस्थ, एकाकी इतने काल तक खड़े रहे कि उनके सहारे वल्मीक जम गये, बेलें उठकर शरीर को लपटने लगीं। उन वल्मीकों में कीड़े मकोड़े ने घर बना लिये।

इस कामदेवोपम सर्वाङ्ग सुन्दर बलिष्ठ पुरुष ने निदारुण कायक्लेश में वर्ष के वर्ष बिता डाले। लोग देखकर हा हा खाते थे और नि स्तब्ध रह जाते थे। उसकी स्पृहणीय काया मिट्टी बनी जा रही थी। स्त्रियाँ उस निमीलित-नेत्र, मग्न-मौन, शिला की भाँति अड़े हुए पुरुष पुंगव के चरणों को धो-धोकर वह पानी आँखो लगाती थीं। उसके चरणों के पास की मिट्टी औषधी समझी जाती थी। पर वह सब ओर से बिलग, अनपेक्ष, बन्द आँख, बन्द मुख, मलिन देह, कृश गात, तपस्या में लीन था।

यह था, पर कैवल्य उसे नहीं प्राप्त हुआ, ज्ञानी लोग इसपर कि विमूढ़ थे।

* * * *

जीवन्मुक्त भगवान् आदिनाथ से लोगों ने पूछा—भगवन्, दीर्घकाल से कुमार बाहुबली अतिशय कठोर तपश्चर्या कर रहे हैं। आपको ज्ञात तो है!

भगवान् बोले—हाँ ज्ञात है।

'उससे हमारा हृदय काँपता है। आप उन्हें इससे विरक्त करेंगे!

भगवान् ने कहा—नहीं। एक निष्ठा के साथ जो किया जाता है उससे किसी का अपकार नहीं होता।

लोगों ने पूछा—किन्तु भगवन्, कुमार बाहुबली को अब तक कैवल्य-सिद्धि क्यों नहीं हो सकी!

भगवान् ने कहा—यह तुम पीछे जानोगे।

(४)

भरत राज्यशासन चला रहे थे। प्रथम चक्रवर्ती भरत के ऐश्वर्य का पार न था। मणि माणिक-मुक्ता की दीप्ति से उनका परिच्छद जगमग होता था। उनके नाम का आतङ्क दिग्दिगन्त में छाया था। सब प्रकार के सुख विलास और आमोद प्रमोद के साधन उनके संकेत पर प्रस्तुत थे। और वे अपने अखण्ड निष्कण्टक चक्रवर्तित्व का उपभोग कर रहे थे।

इसको भी वर्षों के वर्षों हो गये।

एक दिन भगवान् आदिनाथ के पास पहुँचकर भरत ने कहा—भगवन्, भाई बाहुबली को यह अधिकार मिला कि वह मुझको छोड़कर और राज्य को छोड़कर स्वाधीन रहें और सत्य को पावें। जो मेरे अधिकार में नहीं आता था, जो बाहुबली का हो गया था, उस राज्य को लेने को मैं रह गया। मेरे लिए अस्वीकार करने को तनिक भी अवकाश नहीं छोड़ा गया। मुझे शिकायत नहीं है। लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ, क्या मैं अब दीक्षा नहीं ले सकता?

भगवान् ने कहा—ले सकते हो। अगर सत्य की खोज और सत्य की उपलब्धि राजत्व के द्वारा तुम्हारे निकट अगम्य बन गई है, तो तुम उसे अवश्य तज सकते हो। और मैं कह सकता हूँ—अगम्य बन जाना भी चाहिए। तुम पचास वर्ष से ऊपर के हुए न?

भरत सन्तुष्ट-चित्त महलों को लौट आये। और दो दिन बाद घोषणा हो गई कि चक्रवर्ती अब दीक्षा लेंगे।

नगरवासियों में विकलता छा गई। साम्राज्य के प्रान्त प्रान्त से विरोध में अनुनय प्रार्थनाएँ आईं। किन्तु भरत ने एक प्रतिनिधि सभा को अपना उत्तराधिकार देकर दीक्षा ले ली।

और, राज्याभरण उतारते-उतारते मुहूर्त के अन्तर में उन्हें निर्मल कैवल्य की उपलब्धि हो गई।

   

लोगों ने क्लिष्ट भाव से भगवान् आदिनाथ की शरण में जाकर पूछा—

उनकी इस तपस्या की कीर्ति दिग्दिगन्त में फैल गई। देश देश से लोग उनके दर्शन को आने लगे। भक्तों की संख्या न थी। उनकी महिमा और पूजा का परिमाण न था।

किन्तु बाहुबली भक्तों और उनकी पूजा से विमुख होकर घोर से घोरतर निर्जन दुष्प्राप्य एकान्त मे चले जाते थे। एक स्थान पर एक बार अडिग, एकस्थ, एकाकी इतने काल तक खड़े रहे कि उनके सहारे वल्मीक जम गये, बेलें उठकर शरीर को लपटने लगीं। उन वल्मीकों में कीड़े मकोड़े ने घर बना लिये।

इस कामदेवोपम सर्वाङ्ग सुन्दर बलिष्ठ पुरुष ने निदारुण कायक्लेश में वर्ष के वर्ष बिता डाले। लोग देखकर हा हा खाते थे और नि स्तब्ध रह जाते थे। उसकी स्पृहणीय काया मिट्टी बनी जा रही थी। स्त्रियाँ उस निमीलित-नेत्र, मग्न-मौन, शिला की भाँति अड़े हुए पुरुष पुंगव के चरणों को धो-धोकर वह पानी आँखो लगाती थीं। उसके चरणों के पास की मिट्टी ओषधी समझी जाती थी। पर वह सब ओर से विलग, अनपेक्ष, बन्द आँख, बन्द मुख, मलिन देह, कृश गात, तपस्या में लीन था।

यह था, पर कैवल्य उसे नहीं प्राप्त हुआ, ज्ञानी लोग इसपर कि विमूढ थे।

*　　*　　*　　*

जीवन्मुक्त भगवान् आदिनाथ से लोगों ने पूछा—भगवन्, दीर्घकाल से कुमार बाहुबली अतिशय कठोर तपश्चर्या कर रहे हैं। आपको ज्ञात तो है?

भगवान् बोले—हाँ ज्ञात है।

'उससे हमारा हृदय काँपता है। आप उन्हें इससे विरक्त करेंगे?

भगवान् ने कहा—नहीं। एक निष्ठा के साथ जो किया जाता है उससे किसी का अपकार नहीं होता।

लोगों ने पूछा—किन्तु भगवन, कुमार बाहुबली को अब तक कैवल्य-सिद्धि क्यों नहीं हो सकी?

भगवान् ने कहा—यह तुम पीछे जानोगे।

(४)

भरत राज्यशासन चला रहे थे। प्रथम चक्रवर्ती भरत के ऐश्वर्य का पार न था। मणि माणिक मुक्ता की दीप्ति से उनका परिच्छद जगमग होता था। उनके नाम का आतङ्क दिग्दिगन्त में छाया था। सब प्रकार के सुख विलास और आमोद प्रमोद के साधन उनके संकेत पर प्रस्तुत थे। और वे अपने अखण्ड निष्कण्टक चक्रवर्तित्व का उपभोग कर रहे थे।

इसको भी वर्ष के वर्ष हो गये।

एक दिन भगवान् आदिनाथ के पास पहुँचकर भरत ने कहा—भगवन्, भाई बाहुबली को यह अधिकार मिला कि वह मुझको छोड़कर और राज्य को छोड़कर स्वाधीन रहें और सत्य को पायें। जो मेरे अधिकार में नहीं आता था, जो बाहुबली का हो गया था, उस राज्य को लेने को मैं रह गया। मेरे लिए अस्वीकार करने को तनिक भी अवकाश नहीं छोड़ा गया। मुझे शिकायत नहीं है। लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ, क्या मैं अब दीक्षा नहीं ले सकता?

भगवान् ने कहा—ले सकते हो। अगर सत्य की खोज और सत्य की उपलब्धि राजत्व के द्वारा तुम्हारे निकट अगम्य बन गई है, तो तुम उसे अवश्य तज सकते हो। और मैं कह सकता हूँ—अगम्य बन जाना भी चाहिए। तुम पचास वर्ष से ऊपर के हुए न!

भरत सन्तुष्ट-चित्त महलों को लौट आये। और दो दिन बाद घोषणा हो गई कि चक्रवर्ती अब दीक्षा लेंगे।

नगरवासियों में विकलता छा गई। साम्राज्य के प्रान्त प्रान्त से विरोध में अनुनय प्रार्थनाएँ आईं। किन्तु भरत ने एक प्रतिनिधि सभा को अपना उत्तराधिकार देकर दीक्षा ले ली।

और, राज्याभरण उतारते-उतारते मुहूर्त के अन्तर में उन्हें निर्मल कैवल्य की उपलब्धि हो गई।

 





की शरण में जाकर

लोगों ने क्लिष्ट भाव से

श्री सियारामशरण गुप्त

आपका जन्म १८९५ ई० में हुआ। आपने पहले-पहल कहानियाँ १९२८ ई० में लिखना प्रारम्भ किया। आप प्रख्यात कवि हैं और आपका जन्म भी एक ऐसे परिवार में हुआ है जिसे श्री मैथिलीशरण गुप्त जैसे प्रथम श्रेणी के कवि को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त है। कहानी लेखक भी आप कवि की ही भाँति सफल हैं। इसके अतिरिक्त आपने उपन्यास भी लिखे हैं। आपके निबन्धों का भी एक संग्रह प्रकाशित हो चुका है। मार्मिक लघु कथा लिखने में आप विशेष सिद्ध हस्त हैं। आपकी कहानियों की सादगी और उनकी मार्मिकता ही बरबस पाठक को अपनी ओर खींचती है।

आपकी कविताओं के संग्रह 'अंतिम आकांक्षा' 'पुण्यपर्व' आदि, उपन्यास 'गोद' 'नारी' आदि, निबन्ध-संग्रह 'झूठ-सच' प्रकाशित हुए हैं।

काकी

उस दिन बड़े सवेरे जब श्यामू की नींद खुली तब उसने देखा—घर भर में कुहराम मचा हुआ है। उसकी काकी—उमा—एक कम्बल पर नीचे से ऊपर तक एक कपड़ा ओटे हुए भूमि-शयन कर रही है, और घर के सब लोग उसे घेरकर बड़े करुण स्वर में विलाप कर रहे हैं।

लोग जब उमा को श्मशान ले जाने के लिए उठाने लगे तब श्यामू ने बड़ा उपद्रव मचाया। लोगों के हाथों से छूटकर वह उमा के ऊपर जा गिरा। बोला—काकी तो सो रही हैं। उन्हें इस तरह उठाकर कहाँ लिये जा रहे हो? मैं न ले जाने दूँगा।

लोगों ने बड़ी कठिनता से उसे हटा पाया। काकी के अग्नि संस्कार में भी वह न जा सका। एक दासी राम राम करके उसे घर पर ही सँभाले रही।

यद्यपि बुद्धिमान गुरुजनों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी काकी उसके मामा के यहाँ गई है, परन्तु असत्य के आवरण में सत्य बहुत समय तक छिपा न रह सका। आसपास के अन्य अबोध बालकों के मुँह से ही वह प्रकट हो गया। यह बात उससे छिपी न रह सकी कि काकी और कहीं नहीं, ऊपर राम के यहाँ गई है। काकी के लिए कई दिन तक लगातार रोते रोते उसका रुदन तो क्रमशः शान्त हो गया, परन्तु शोक शान्त न हो सका। जिस तरह वर्षा के अनन्तर एक ही दो दिन में पृथ्वी के ऊपर का पानी अगोचर हो जाता है, परन्तु बहुत भीतर तक उसकी आर्द्रता बहुत दिन तक बनी रहती है, उसी प्रकार वह शोक उसके अन्तस्तल में जाकर बस गया। वह प्राय अकेला बैठा बैठा शून्य मन से आकाश की ओर ताका करता।

एक दिन उसने ऊपर एक पतंग उड़ती देखी। न जाने क्या सोचकर उसका हृदय एकदम खिल उठा। विश्वेश्वर के पास जाकर बोला—काका, मुझे एक पतंग मँगा दो।

पत्नी की मृत्यु के बाद से विश्वेश्वर बहुत अन्यमनस्क से रहते थे। 'अ... मँगा दूँगा'—कहकर वे उदास भाव से बाहर चले गये।

श्यामू पतंग के लिए बहुत उत्कण्ठित हो उठा। वह अपनी ... तरह न रोक सका। एक ... पर विश्वेश्वर का कोट टँगा

इधर उधर देखकर उसने पास एक स्टूल सरकाकर रखा और ऊपर चढ़कर कोट की जेबें टटोलीं। उनमें से एक चवन्नी का आविष्कार करके वह तुरन्त ही वहाँ से भाग गया।

सुखिया दासी का लड़का—भोला—श्यामू का समवयस्क साथी था। श्यामू ने उसे चवन्नी देकर कहा—अपनी जीजी से कहकर गुपचुप एक पतंग और डोर मँगा दो। देखो, खूब अकेले में लाना, कोई जान न पाये।

पतंग आई। एक अँधेरे घर में उसमें डोर बाँधी जाने लगी। श्यामू ने धीरे से कहा—भोला, किसी से न कहे तो एक बात कहूँ।

भोला ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, किसी से न कहूँगा।

श्यामू ने रहस्य खोला। कहा—मैं यह पतंग ऊपर राम के यहाँ भेजूँगा। इसे पकड़कर काकी नीचे उतरेगी। मैं लिखना नहीं जानता। नहीं तो इस-पर उसका नाम लिख देता।

भोला श्यामू से अधिक समझदार था। उसने कहा—तुमने बात तो बड़ी अच्छी सोची, परन्तु एक कठिनता है। यह डोर पतली है। इसे पकड़कर काकी उतर नहीं सकती। इसके टूट जाने का डर है। पतंग में मोटी रस्सी हो तो सब ठीक हो जाय।

श्यामू गम्भीर हो गया। मतलब यह—बात लाख रुपये की सुझाई गई है। परन्तु कठिनता यह थी कि मोटी रस्सी कैसे मँगाई जाय। पास में दाम हैं नहीं और घर के जो आदमी उसकी काकी को बिना दया-मया के जला आये हैं, वे उसे इस काम के लिए कुछ नहीं देंगे। उस दिन श्यामू को चिन्ता के मारे बड़ी रात तक नींद नहीं आई।

पहले दिन की ही तरकीब से दूसरे दिन फिर उसने विश्वेश्वर के कोट से एक रुपया निकाला। ले जाकर भोला को दिया और बोला—देख भोला किसी को मालूम न होने पाये। अच्छी-अच्छी दो रस्सियाँ मँगा दे। एक रस्सी ओछी पड़ेगी। जवाहिर भैया से मैं एक कागज पर 'काकी' लिखवा रक्खूँगा। नाम की चिट रहेगी तो पतंग ठीक उन्हीं के पास पहुँच जायगी।

दो घण्टे बाद प्रफुल्ल मन से श्यामू और भोला अँधेरी कोठरी में बैठे-बैठे पतंग में रस्सी बाँध रहे थे। अकस्मात् शुभ-कार्य में विघ्न की तरह उग्र

मूर्ति धारण किये हुए विश्वेश्वर वहाँ आ घुसे। भोला और श्यामू को धमका कर बोले—तुमने हमारे कोट से रुपया निकाला है?

भोला सकपकाकर एक ही डाँट में मुखबिर बन गया। बोला—श्यामू भैया ने रस्सी और पतंग मँगाने के लिए निकाला था।

विश्वेश्वर ने श्यामू को दो तमाचे जड़कर कहा—चोरी सीखकर जेल जायगा? अच्छा, तुझे आज अच्छी तरह समझाता हूँ।—कहकर दो चार थप्पड़ और जड़कर पतंग फाड़ डाली। अब रस्सियों की ओर देखकर उन्होंने पूछा—ये किसने मँगाई ?

भोला ने कहा—इन्हीं ने मँगाई थीं। कहते थे, इससे पतंग तानकर काकी को राम के यहाँ से नीचे उतारेंगे।

विश्वेश्वर एक क्षण के लिए हतबुद्धि होकर खड़े रह गये। उन्होंने फटी हुई पतंग उठाकर देखी। उसपर एक कागज चिपका था, जिसपर लिखा हुआ था 'काकी'।



श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का जन्म १९०५ ई० में हुआ। कहानियाँ आपने सबसे पहिले ई० १९२८ में लिखना आरम्भ कीं। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानियाँ लिखने की प्रतिभा बहुत ही सुन्दर है। कहानी के टेकनिक का ज्ञान तो आपका बहुत ही अच्छा है। आपकी कहानियाँ गठी हुई, उनकी भाषा विषय के अनुकूल एवं उनका चरित्र चित्रण बहुत ही स्वाभाविक है।

आपकी कहानियों का एक संग्रह 'अमावस' और नाटक 'रेवा' अभी हाल में ही प्रकाशित हुए हैं।

एक सप्ताह

गुलमर्ग

१२ श्रावण .

प्यारे कमल !

मुझे माफ़ करना, उस दिन शाम को चाय के समय तुम मेरा इन्तज़ार करते रहे होगे और मैं इधर खिसक आया। आज तुमसे ११०० मील की दूरी पर और तुम्हारी नगरी से ६००० फीट अधिक ऊँचाई पर बैठकर मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम जानते ही हो कि मैं किस तबीयत का आदमी हूँ। उफ़, वहाँ कितना बोझ था। काम, काम, हर वक्त काम। मेरी तबीयत ऊबसी ऊब गई और तुम्हें भी सूचना दिये बिना मैं अपनी कार पर इतने लम्बे सफ़र के लिए निकल आया। उस दिन चाय के वक्त मुझे मौजूद न पाकर यद्यपि तुम मुझपर काफ़ी खिज भी लिये ही होगे, फिर भी उस असुविधा के लिए मुझे माफ़ कर देना।

हिमालय की यह विशाल घाटी बड़ी सुहावनी है। घने जंगल, निर्मल झरने, विस्तृत मैदान, चारों ओर बर्फ़ से ढकी पहाड़ों की ऊँची-ऊँची चोटियाँ और दूर पर दिखाई देनेवाली सुन्दर झील। इस स्थान से मैं सचमुच प्यार करता हूँ। यहाँ एक सप्ताह बिलकुल निकम्मा रहकर काटूँगा। कुछ नहीं करूँगा। तुम्हें ही पत्र लिखूँगा और तुम्हारे पत्रों को छोड़कर और कुछ नहीं पढ़ूँगा।

भाई कमल, मैं अकेला हूँ। तुमने अनेक बार मेरे इस अकेलेपन की आलोचना की है, मगर यहाँ आकर मैं अनुभव करता हूँ कि जैसे प्रकृति मेरी मा है। मैं अकेला कहाँ हूँ, मैं तो अपनी मा की गोद में हूँ।

चिन्ता न करना। मैं यहाँ एक सप्ताह से अधिक नहीं ठहरूँगा। २२ श्रावण की शाम को तुम मुझे अपनी चाय की टेबिल पर ही पाओगे।

बाहर एक कसा हुआ घोड़ा मेरा इन्तज़ार कर रहा है, अतः बाकी फिर।

तुम्हारा—

स०

मैं चौंका, और उधर उसी समय उस लड़की की निगाह मुझपर पड़ी। शायद बिलकुल ही अकस्मात्। वह भी चौंक गई। क्षण भर के लिए सहसा उसकी और मेरी आँखें आपस में मिल गईं।

बस, भाई कमल, बात इतनी ही है, और कुछ भी नहीं। मैं उसी क्षण वापस लौट पड़ा था, और जान पड़ता है, वह लड़की भी यहाँ से चल दी थी, मगर इस ज़रा सी बात ने न-जाने क्यों मेरे दिल पर बहुत अजीब सा प्रभाव डाला है। इस बात को हुए अब ६ घण्टे बीत चुके हैं, और इन ६ घण्टों में चौंकी हुई हरिण की सी वे आँखें मेरे मानसिक नेत्रों के सामने बीसियों बार घूम गई हैं।

तुम सोचते होगे, इस सबमें कोई ख़ास बात ज़रूर है। और नहीं तो *कम-से-कम यह लड़की कोई असाधारण सुन्दरी तो अवश्य होगी*, मगर वास्तविकता यह नहीं है। उस लड़की के चेहरे में असाधारणता ज़रा भी नहीं थी। लम्बा क़द, मामूली चेहरा, गेहुँआ रंग। और भी कोई बात उसमें ऐसी नहीं थी, जिसे असाधारण कहा जा सके। अपनी नगरी में हम लोग इस कन्या से अत्यधिक रूप-सौन्दर्यवाली बीसियों युवतियों को रोज देखते हैं। मेरी परिचित कुमारियों में भी कितनी ही सौन्दर्य की दृष्टि से उससे कहीं बढ-चढकर हैं। यहाँ गुलमर्ग में भी उससे बहुत अधिक सुन्दरियों को मैंने काफ़ी बड़ी संख्या में देखा है। फिर भी, कुछ समझ में नहीं आता कि इस 'फिर भी' का कारण क्या है!

आज इतना ही।

तुम्हारा—
स०

(४)

गुलमर्ग
१६ श्रावण
प्रातः ८ बजे

कमल,

नींद से उठते ही सबसे पहले मेरी निगाह रात के पत्र पर गई है। रात में क्या ख़ुराफ़ात सी लिख गया। दिल में आता है, यह पत्र फाड़ डालूँ।

जी कुछ भारी सा है। कुछ लिखने की भी इच्छा नहीं होती। और इस तरह निश्चेष्ट भाव से यहाँ चुपचाप पड़े रहना तो आज मुझे सह्य भी नहीं हो सकता। तुम जानते हो, ऊपर की दो लाइनें लिखने में कितना समय लगाया है? पूरे २२ मिनट। इस समय दूसरा पत्र लिख सकना मेरे लिए असम्भव है। चलो, अब कहीं आवारागर्दी करने जाऊँगा।

सायंकाल ६॥ बजे।

मेरा जी इस समय बहुत प्रसन्न है। मेरी टाँगें, मेरा सम्पूर्ण शरीर बिलकुल थकी हुई हालत में हैं; परन्तु जी चाहता है कि मैं इस समय भी नाचूँ, कूदूँ, और इधर-उधर दौड़ता फिरूँ। मेरे हृदय में इस समय उत्साह का जो अन्धड़-सा चल रहा है, मुझे मालूम है कि उसकी प्रतिक्रिया भी ज़रूर होगी। अपने जी के इस व्यर्थ उत्साह को बहकाने का मुझे इससे बढ़कर अधिक अच्छा और कोई उपाय नहीं मिला कि सुबह पत्र पूरा करने बैठ जाऊँ।

साँझ हो आई है। आज का सारा दिन मैंने सैर-सपाटे में काटा है। थोड़ी देर पहले घर वापस आया हूँ। तुम्हारी चिट्ठी बीच में छोड़कर मैं एक मजबूत घोड़े पर सैर करने के लिए निकल गया था। यहाँ के सभी मार्ग मेरे जाने पहचाने हैं, इससे कोई मार्ग-दर्शक भी मैंने अपने साथ नहीं लिया था। मेरे निवास स्थान से क़रीब ८ मील की दूरी पर एक बड़ा पहाड़ी झरना है। इस झरने को यहाँ 'निगली नाला' कहते हैं। मैं आज इसी निगली नाले तक गया था।

खूब टेढ़ी-मेढ़ी राह है। कहीं पहाड़ों के चक्कर हैं, कहीं घास से मढ़े मैदान, कहीं ऊँचाई निचाई, कहीं देवदार मोड़ और कहीं घने जंगल। रास्ता क्या है, ऊबड़-खाबड़-सी एक पगडंडी है। इस रास्ते पर अपना घोड़ा खूब निश्चिन्तता के साथ दौड़ाया। ऊपर असंख्य पक्षियों का मधुर कलरव था। राह के दोनों ओर फूल पत्तियाँ थीं। हवा में सुगन्ध थी, आसमान में सूरज बादलों के साथ आँखमिचौनी खेल रहा था। कभी सरदी बढ़ जाती थी और कभी हल्की हल्की धूप निकल आती थी। शीघ्र ही मैं निगली नाले पर जा पहुँचा। झरने के दोनों ओर घना जंगल है। बीच में बड़ी बड़ी चट्टानें पड़ी हैं। एक-

एक चट्टान सैकड़ों-हज़ारों टन की होगी। झरने का स्वच्छ जल इन भीमकाय चट्टानों से टकराकर शोर मचाता है, फिसलता है और फिर उछल-उछलकर इन्हें शीशा करता है। झरने की शीतलता, झाग, सफेदी और शोर—ये सब निरन्तर बने रहते हैं। सदा ताज़े, उत्साहपूर्ण।

घोड़े को घास चरने के लिए खुला छोड़कर मैं दो तीन घण्टों तक झरने की चट्टानों पर स्वच्छन्दतापूर्वक कूदता फांदता रहा। अपने कैमरे से इस झरने के मैंने अनेक फोटो भी लिये। खाया, पीया और उसके बाद वापस लौट चला।

वापसी में मैंने अपने घोड़े को सरपट नहीं दौड़ाया। राह के दृश्यों ने मेरा सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर खींच लिया था, अत घोड़े पर मैंने किसी तरह का शासन नहीं किया। वह आज़ादी के साथ, चाहे जिस चाल से, चलता रहा। सहसा सामने की ओर से मुझे एक चीख-सी सुनाई दी। मेरी तन्मयता भग हो गई। मैंने देखा, सामने के मैदान में एक घोड़ा बे तहाशा दौड़ा चला जा रहा है, और उसपर एक स्त्री सवार है। घोड़े की ज़ीन को लेटी सी दशा में कसकर पकड़े हुए वह नारी सहायता के लिए भरसक चिल्ला रही थी। उसी निगाह में मुझे यह भी दिखाई दिया कि पग डण्डी पर तीन-चार अन्य घुड़सवार भी मौजूद हैं। सब की सब लड़कियाँ ही। वे सब असमर्थों का सा भाव धारण किये अपने काश्मीरी कुलियों को वह घोड़ा पकड़ने का आदेश दे रही थीं।

एक ही क्षण में मैंने अपना घोड़ा उसी ओर दौड़ा दिया और शीघ्र ही उस स्त्री सवार के निकट जा पहुँचा। अपने घोड़े पर से कूदकर मैंने उस घोड़े की लगाम पकड़ ली।

फिर वही आँखें!

मैं सहसा घबरा सा गया। मुझे यह भी नहीं सूझा कि मैं क्या कहकर उस कन्या को आश्वासन दूँ। मगर मेरी घबराहट की ओर उसका ध्यान नहीं गया। वह स्वय ही बहुत अधिक सकटापन्न दशा में जो थी।

पहले उसी ने मुझे धन्यवाद दिया। मालूम होता है, उसने मुझे पहचाना

नहीं। धन्यवाद देकर उसने शीघ्रता से कहा—बड़ा नटखट घोड़ा है! मैं पहले ही कह रही थी कि मैं इसपर सवार न होऊँगी।

उसकी आवाज़ में अभी तक भय की कँपकँपी थी। मैंने कहा—आपने बड़ी हिम्मत दिखाई है। घोड़े की चाल इतनी तेज़ हो जाने पर भी आप गिरीं नहीं।

वह इसपर लजा सी गई। उसने कहा—मैं घुड़सवारी तो क्या जानूँ! सुना था, इधर के घोड़े बड़े सीधे होते हैं।

इसी समय उसके साथ की अन्य सभी लड़कियाँ और घोड़ेवाले कुली भी वहाँ आ पहुँचे। घोड़े की लगाम अभी तक मेरे हाथों में थी, और वह लड़की भी अभी तक घोड़े की पीठ पर ही थी। एक काश्मीरी ने लगाम अपने हाथों में थाम ली और दूसरे ने ज़ीन को सँभाला, वह लड़की नीचे उतर आई। उसके साथ की सब लड़कियों ने मुझे धन्यवाद दिया, और मैंने कहा कि इसमें धन्यवाद की बात ही क्या है।

उन्होंने मुझसे पूछा—आप किस जगह ठहरे हुए हैं?

मैंने अपना पता बता दिया।

मेरे निवासस्थान का पता सुनकर जैसे उस लड़की ने मुझे पहचान लिया। उसके मुँह से हठात् निकला—'ओहो!' परन्तु उसी क्षण अपने को पूर्णत संयत करके उसने बड़ी शान्ति के साथ कहा—मैं समझ गई।

इसके बाद दो चार मामूली सी और बातें भी हुईं, और तब वे लोग निगली नाले की ओर बढ़ गये। जाते हुए कल रात के लिए मुझे अपने यहाँ चाय के लिए निमन्त्रित भी करते गये।

उस नटखट घोड़े की रास अब एक काश्मीरी के हाथ में थी। वे सब घोड़े अब बहुत धीमी चाल से जा रहे थे, और वह घोड़ा सबसे पीछे कर दिया गया था। मेरी नज़र अभी तक उसी ओर थी कि कुछ ही दूर जाकर उस लड़की ने पीछे की ओर घूमकर देखा।

अचानक एक बार पुन मेरी और उसकी नज़र मिल गई।

ओह, फिर वही निष्पाप, लज्जाभरी, स्वच्छ आँखें!

भाई कमल, मुझे नहीं मालूम कि वे लड़कियाँ कौन हैं। सभी नव-

युवतियाँ हैं। मेरा अनुमान है कि उनमें से अभी तक किसी का विवाह नहीं हुआ। मैं उनमें से किसी का नाम भी नहीं जानता, मकान का पता देने के लिए केवल एक पुरुष का नाम ही उन्होंने मुझे बताया है। मैं यह भी नहीं जानता कि वे आपस में बहनें हैं, सहेलियाँ हैं, एक साथ पढ़नेवाली हैं या रिश्तेदार हैं। मुझे कुछ भी नहीं मालूम। परन्तु एक बात मैंने अच्छी तरह देख ली। वह यह कि उस लड़की के गेहुएँ चेहरे में असाधारणता ज़रा भी नहीं है। उसकी आँखों में, उसकी पलकों या भौंहों में ऐसी कोई बात नहीं है, जिसके सम्बन्ध में कवि लोग बड़ी-बड़ी उपमाएँ खोज-खोजकर दिया करते हैं। फिर भी उसकी निगाह में कुछ है। क्या है—यह मैं नहीं कह सकता, मगर कुछ है ज़रूर।

बाहर अँधेरा हो गया है। सरदी भी अब अनुभव होने लगी है, अतः प्रणाम।

अभिन्न—
स०

(५)

गुलमर्ग
१७ श्रावण ••

प्यारे कमल,

आज जाकर मुझे तुम्हारा पहला पत्र मिला है। तुम सच मानो, गुलमर्ग के छोटे-से बाज़ारों के साइनबोर्डों के अतिरिक्त यही एक पहली चीज़ है, जिसे मैंने इन पाँच छः दिनों में पढ़ा है।

मेरा आज का दिन भी बड़े आनन्द से गुज़रा है। सुबह-सुबह मैं उन लोगों के यहाँ चाय पीने गया था। उसके बाद हम लोग एक साथ खिलनमर्ग की सैर के लिए निकल गये। वहाँ घंटों तक उस खुले मैदान में बैठकर ताश खेला किये। सैर की, खेले कूदे और फिर वापस लौट आये। सब लोग मेरे निवास-स्थान पर आये। शाम की चाय यहाँ ही हुई, और अभी अभी मैं उन्हें उनके घर तक छोड़कर आ रहा हूँ।

मुझे उनका परिचय भी मिल गया है। वह लड़की अपने भाई और एक

चचेरी बहन के साथ काफ़ी दिन हुए यहाँ आई थी। उसके पिता एक सम्पन्न व्यापारी हैं, उनका कारोबार खूब चलता हुआ है। वह लड़की लाहौर के एक महिला-कालेज में पढ़ती है, और बाक़ी तीनों लड़कियाँ उसके ख़ास की हैं, उसकी मित्र हैं, और उसी के निमन्त्रण पर यहाँ आई हैं। उसके भाई का स्वभाव भी बड़ा मधुर है। गुलमर्ग में उसके दोस्तों की इतनी अधिकता है कि उनकी ओर से छुटकारा पा सकना ही उसके लिए कठिन हो जाता है, हम लोग आपस में खूब हिलमिल गये हैं। मैंने उन लोगों के अनेक फ़ोटो भी लिये हैं।

आज जल्दी ही सो जाने को जी चाहता है। तुम्हारा पत्र इस समय मेरी आँखों के सामने नहीं है। कुछ याद नहीं आ रहा है कि तुमने उसमें कोई बात पूछी भी या नहीं! चलो, जाने दो। यह तो मुझे मालूम ही है कि तुम कोई खास काम की बात तो पूछ ही नहीं सकते!

यह भी नामुमकिन नहीं कि मैं यहाँ कुछ दिन और ठहर जाऊँ।

स्नेही—
स०

(६)

गुलमर्ग
१८ श्रावण

कमल,

साँझ डूबने को है। दिन भर से आसमान में बादल छाये हुए थे। इस समय मूसलधार वर्षा हो रही है। मेरे कमरे की सब खिड़कियाँ बन्द हैं। कमरे में बत्ती जल रही है। मेरे कानों में एक संगीत गूँज रहा है—बहुत करुण, बहुत पवित्र और बहुत ही मधुर। इस संगीत मे शब्द नहीं, केवल स्वर है। स्वर भी क्या, केवल गूँज है। छत की टीन पर वर्षा पड़ने की जो एक-सी आवाज हो रही है, वह इस गूँजमय संगीत का साज है और ठण्डी, गीली हवा की धू धू इस संगीत की तान का काम कर रही है।

मैं अकेला हूँ। दिन भर अकेला नहीं था, परन्तु इस समय फिर से अकेला ही हूँ। वह अपने भाई और छोटी बहन को साथ लेकर यहाँ आई

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह तरह के मेवे दूध में औटे गये, सोने का वर्क़ चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई, ताक़ के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा माल अच्छा है, ताक़ की ऊँचाई अन्दाजी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झन झनाहट की आवाज़ के साथ फ़र्श पर।

आवाज रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात भर उसे नींद न आई, किस दाँव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर जिन्दा न बचे, यही पड़े पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुसकराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौक़ा हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, बस एकदम उलट गई।

आवाज़ जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गई। रामू की बहू सर झुकाये हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली—अरे राम, बिल्ली तो मर गई। माजी बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।

मिसरानी बोलीं—माजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।

सासजी बोलीं—हाँ, ठीक कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाय, तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला!

महरी ने कहा—फिर क्या हो, कहो तो पण्डितजी को बुला लाऊँ।

सास की जान में जान आई—अरे हाँ, जल्दी दौड़ के पण्डितजी को बुला ला।

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई। पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ़ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े—पण्डिताइन से मुसकराते हुए बोले—भोजन न बनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली। प्रायश्चित्त होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-से मोटे से, आदमी थे। लम्बाई चार फ़ीट दस इञ्च, और तोंद का घेरा अट्ठावन इञ्च। चेहरा गोल मटोल, मूँछ बड़ी बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पसेरी खुराकवाले पण्डितों को ढूँढा जाता था तो पण्डित परमसुखजी को इस लीस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पण्डित परमसुख पहुँचे, और कोरम पूरा हुआ। पचाइत बैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की मा, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुख। बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की मा ने कहा—पण्डितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है?

पण्डित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महूरत भी जब मालूम हो जाय जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है।

'यह कोई सात बजे सुबह !'—मिसरानीजी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पन्ने के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलाईं, माथे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया, हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! बड़ा बुरा हुआ, प्रात काल ब्राह्म मुहूर्त्त में बिल्ली की हत्या ! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान ! रामू की मा, यह तो बड़ा बुरा हुआ।

रामू की मा की आँखों में आँसू आ गये—तो फिर पण्डितजी, अब क्या होगा, आप ही बतलायें !

पण्डित परमसुख मुस्कराये—रामू की मा, चिन्ता की कौन सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं ? शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान है, सो प्रायश्चित से सब कुछ ठीक हो जायगा।

रामू की मा ने कहा—पण्डितजी, उसी लिए तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय ?

'किया क्या जाय—यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाय—जब तक बिल्ली न दे दी जायगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाय।'

छुन्नू की दादी—हाँ, और क्या, पण्डितजी तो ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय।

रामू की मा ने कहा—तो पण्डितजी कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय ?

पण्डित परमसुख मुस्कराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाय ? अरे रामू की मा, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वज़न भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय। लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की मा, बिल्ली के तौल भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि

बिल्ली बीस इक्कीस सेर से कम की क्या होगी, हाँ, कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी अपनी श्रद्धा।

रामू की मा ने आँख फाड़कर पण्डित परमसुख को देखा—अरे बाप रे! इक्कीस तोला सोना! पण्डितजी, यह तो बहुत है, तोला भर की बिल्ली से काम निकलेगा?

पण्डित परमसुख हँस पड़े—रामू की मा! एक तोला सोने की बिल्ली! अरे रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया? बहू के सिर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं!

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा पाठ की बात आई। पण्डित परमसुख ने कहा—उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं। रामू की मा, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।

'पूजा का सामान कितना लगेगा?'

'अरे कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे दान के लिए क़रीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन भर तिल, पाँच मन जौ और पाँच मन चना, चार पसेरी घी, और मन भर नमक भी लगेगा। बस इतने से काम चल जायगा।'

'अरे बाप रे! इतना सामान, पण्डितजी, इसमें तो सौ डेढ़-सौ रुपया ख़र्च हो जायगा।'—रामू की मा ने रुआँसी होकर कहा।

'फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की मा! ख़र्च को देखते वक्त पहिले बहू के पाप को तो देख लो! यह तो प्रायश्चित्त है, कोई हँसी खेल थोड़े ही है—और जैसी जिसकी मरजादा, प्रायश्चित्त में उसे वैसा ख़र्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे वैसे थोड़े हैं, अरे सौ डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।'

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की मा ने कहा—

पण्डितजी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा वैसा पाप तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा ख़र्च भी चाहिए।

छन्नू की दादी ने कहा—और नहीं तो क्या, दान पुन्न से ही पाप कटते हैं। दान पुन्न में किफ़ायत ठीक नहीं।

मिसरानी ने कहा—और फिर माजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे। इतना ख़र्च कौन आप लोगों को अखरेगा।

रामू की मा ने अपने चारों ओर देखा—सभी पञ्च पण्डितजी के साथ। पण्डित परमसुखजी मुसकरा रहे थे। उन्होंने कहा—रामू की मा, एक तरफ़ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ़ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा सा ख़र्च है। सो उससे मुँह न मोड़ो।

एक ठंडी साँस लेते हुए रामू की मा ने कहा, अब तो जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा।

पण्डित परमसुख ज़रा कुछ बिगड़कर बोले—रामू की मा! यह तो ख़ुशी की बात है, अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो—मैं चला। इतना कहकर पण्डितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

'अरे पण्डितजी, रामू की मा को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है—बिगड़ो न।'—मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की मा ने एक स्वर में कहा।

रामू की मा ने पण्डितजी के पैर पकड़े—और पण्डितजी ने अब जमकर आसन जमाया।

'और क्या हो?'

'इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।'—कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा—सो इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जायगा।

'यह तो पण्डितजी ठीक कहते हैं, पण्डितजी की तोंद तो देखो—' मिसरानी ने मुसकराते हुए पण्डितजी पर व्यंग किया।

'अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की मा, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—दो घण्टे में मैं बनवाकर लौटूँगा तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो—और देखो, पूजा के लिए '

पण्डितजी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आई और सब लोग चौंक उठे। रामू की माने घबड़ाकर कहा—अरी क्या हुआ री!

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—माजी, बिल्ली तो उठकर भाग गई।

श्रीमती कमलादेवी चौधरी

हिन्दी की कहानी लेखिकाओं में श्रीमती कमलादेवी चौधरी का स्थान अद्वितीय है। उनकी कहानियों की स्वाभाविकता, भाषा की ओजस्विता, चरित्रों का मार्मिक चित्रण एवं उनकी सभी कहानियों में बहती एक नारी के हृदय की ममता उनके विशेष गुण हैं। इतने गुणों के साथ संभव न था कि वे एक प्रथम श्रेणी की कहानी-लेखिका न होतीं। उनकी कला का यह प्रस्तुत कहानी उचित प्रतिनिधित्व करती है।

आपकी कहानियों के दो संग्रह 'उन्माद' और 'पिकनिक' प्रकाशित हो चुके हैं।

स्वप्न

'महात्माजी, सुरीला की जीवन नौका की पतवार अब मैं आपके हाथों में देता हूँ। आपकी कृपा दृष्टि के बिना संसार में इस दुखिया के लिए दूसरा शान्ति का साधन नहीं है।'

'अपनी एकमात्र कन्या को अपने समीप न रखकर आश्रम में छोड़ने के के लिए विकल क्यों हो!'

'महात्माजी, कभी आप मेरे मित्र थे, मेरी जिन्दगी आप से छिपी नहीं है। आप महान आत्मा हो, आपने अपने जीवन में घोर परिवर्तन कर लिया है। आज तपस्वी हो। किन्तु मैं—मैं जो आज से बीस वर्ष पहले था, बिलकुल वही हूँ। केवल इतना अन्तर हुआ है कि जिस दिन से सुरीला विधवा हुई है, मुझे अपने दुर्व्यसन नरकाग्नि के समान जला रहे हैं।

'महात्माजी, मैं महानीच हूँ, पापी हूँ, दुराचारी हूँ, व्यभिचारी हूँ, किन्तु मेरी पुत्री सुरीला देवी है, लक्ष्मी है, पवित्रता की प्रतिमा है। गुरुदेव, उस पर दया करो। मुझे भय है कि मुझ पामर के दुर्व्यसनों का प्रभाव कहीं उसके पुनीत विचारों को दूषित न कर दे। अब तक वह पूर्णतः संसार के संसर्ग में नहीं आई है, वह कवि है, और किसी और लोक में विचरण करती रहती है, किन्तु नवयौवन का विकास उसे इस पापी संसार से परिचित करा के रहेगा। देव, उसकी पवित्रता की रक्षा करो। वह विधवा है। मैं उसका पतित पिता उसकी आत्मोन्नति का इच्छुक हूँ। मेरी अंतिम अभिलाषा है, मेरी देवी समान पुत्री देवी ही बनकर रहे।'

महात्मा ने सुरीला को आश्रम में रखना स्वीकार कर लिया।

× × ×

महात्मा कभी   । उनकी स्त्री लक्ष्मी ने अन्तिम समय में कहा था—दूसरा विवाह न करना, वरना मेरे बच्चों की दुर्गति हो जायगी। दूसरी मा प्यार के बदले इनसे ..

क्रूर काल ने लक्ष्मी को अपना वाक्य पूरा नहीं करने दिया, किन्तु यह अधूरा वाक्य ही बैरिस्टर दोदिन के हृदय पर अमर छाप डाल गया। लक्ष्मी

की उन्मीलित आँखें जाने कैसी व्यथा छोड़ गई थीं, वे टूटते हुए शब्द विनय की ऐसी अनन्त सीमा का दिग्दर्शन करा गये थे कि बैरिस्टर दीक्षित ने अनेक विपत्तियों का सामना किया, किन्तु दूसरा विवाह नहीं किया। उस दिन से उनके कार्यक्रम में बच्चों का लालन पालन और मृत लक्ष्मी के चित्र का पूजन सम्मिलित हो गया।

स्त्री के देहावसान के समय बैरिस्टर दीक्षित नवयुवक ही थे। नवीन सभ्यता, पश्चिमीय शिक्षा और फैशनेबिल सोसाइटी का रंग उनमें भी पूर्ण मात्रा में व्याप्त था। और शायद इनके वे ही पूर्वसंस्कार चेष्टा करने पर भी उनके मन को चलायमान करते थे। हमेशा उनके हृदय में देवासुर-संग्राम छिड़ा रहता। कितनी ही बार आसुरी वृत्तियों ने अपनी विजय घोषणा करने का निश्चय कर लिया, लेकिन लक्ष्मी की उन आँखों और शब्दों ने सदा उनकी रक्षा की।

संयम के आराधना हेतु स्त्री-जाति से सर्वथा दूर रहने का उन्होंने निश्चय किया। उनके कई मित्र ऐसे थे, जिनकी स्त्रियों से भी उनकी काफ़ी घनिष्ठता थी। लक्ष्मी की मृत्यु के बाद उन लोगों ने बैरिस्टर दीक्षित को पूर्ण सहानुभूति के साथ बच्चों के लालन पालन में सहायता भी दी, किन्तु बैरिस्टर दीक्षित ने उन लोगों की ज़रा भी परवाह न करके उनसे मिलना-जुलना तक बन्द कर दिया। वे अपने चारों ओर के वायुमण्डल में अब स्त्री के नाम को भी स्थान देना नहीं चाहते थे।

बच्चों को पालनेवाली पुरानी आया से भी कह दिया गया कि अब घर आओ तुम्हारी पेंशन प्रतिमास मनीआर्डर द्वारा पहुँचती रहेगी। इस मामले में बैरिस्टर दीक्षित ने न आया के आँसुओं की चिन्ता की, न बच्चों के मानसिक क्लेश की। हाँ, बच्चों को स्वतन्त्रता थी कि जब इच्छा हो, आया के घर जाकर उससे मिल आया करें। उनके अन्य कर्मचारियों में जो सपत्नीक थे, उनके वेतन में वृद्धि के साथ उन्हें आज्ञा हुई कि अलग घर लेकर अपने परिवार को रखें।

यहाँ तक कि बैरिस्टर साहब ने किसी स्त्री-मुवक्किल का केस भी लेना छोड़ दिया। अपनी कन्या सुनीता से बोर्डिङ्ग हाउस में मिलने तक न जाते,

क्योंकि मुख्य अध्यापिका से मुलाक़ात किये बिना लड़कियों में मिल सकना बोर्डिङ्ग हाउस के नियमानुसार सम्भव नहीं था। छुट्टियों में सुनीता का बड़ा भाई उसे लिवा लाता, तभी पिता पुत्री एक दूसरे को देख सकते थे।

इस प्रकार अनेक कठिन नियमों के आवरण में वे अपने को छिपाकर रखने लगे।

× × ×

बैरिस्टर दीक्षित अपने साथ इतनी सख्ती करने पर भी मानसिक सयम न रख पाते। हर समय मानसिक भावनाओं के साथ उनको घोर युद्ध करना पड़ता। दिन भर किसी प्रकार विभिन्न कार्यों में चित्त को उलझाये रखते, रात में गीता पाठ के साथ निद्रादेवी का आह्वान करते, फिर भी स्वप्न में अतीतकाल के हास विलास के दृश्य अपनी छाया डाल ही जाते।

श्यामाचरण वकील के यहाँ पार्टी है। कैलाशबिहारी आग़ा की स्त्री रागिणी आज कैसी सज धजकर आई है। रागिणी के रूप की बराबरी करने वाली फैशनेबिल स्त्री जगत में दूसरी नहीं है। धानी साड़ी पुज़ पर कैसी खिल रही है। ऐसे स्वप्न उनके चित्त को उद्विग्न कर जाते।

बैरिस्टर साहब आफ़िस में क़ानून का अध्ययन कर रहे हैं, और बाहर बरामदे में कोई नया मुवक्किल मुहर्रिर से गुफ्तगू करता है, तो बैरिस्टर साहब की चितेरी कल्पना सब कुछ भुलाकर स्त्री का चित्र उनके सम्मुख खींचती। कोई सफ़ेद साड़ी पहने विधवा होगी। पति की सम्पत्ति पर किसी ने अधिकार कर लिया होगा और अब रोटी देना भी अस्वीकार करता होगा। लाचार मुक़दमे की बात सोचकर आई है। ध्वनि से भी स्त्री प्रतीत होती है, सकोच से धीरे धीरे बोल रही है।

मुहर्रिर के द्वारा मशविरा तो दे दूँगा, किन्तु केस अपने हाथ में नहीं लूँगा। उसी समय मुहर्रिर कमरे में आता, बैरिस्टर साहब की निमग्नता में बाधा पड़ती वे कुछ कम्पित हृदय से कल्पनानुसार सुनने की प्रतीक्षा करते। मुहर्रिर कहता—साहब छदम्मीलाल नामक एक मुवक्किल आया है।

लज्जा और ग्लानि से चित्त चचल हो उठता। वे सोचते—यह क्या है! पहले तो मेरी मानसिक स्थिति ऐसी दुर्बल नहीं थी। कुप्रवृत्तियों के

पराजित करने के साधन उल्टे मुझे ही पराजित कर रहे हैं और मानसिक उन्नति के मार्ग से विमुख करके पतन के मार्ग की ओर आकृष्ट करते हैं। क्या उपाय करूँ भगवान्!

× × ×

पुत्र पुत्रियों के कर्तव्य से निवृत्त होकर बैरिस्टर दीक्षित ने सन्यास ले लिया। हिमालय की पहाड़ियों में भ्रमण करते हुए एक पहुँचे हुए महात्मा से उनका साक्षात् हुआ। उसी दिन वे उनके शिष्य हो गये।

महात्मा वास्तव में एक दिव्य पुरुष थे। संसार से विरक्त होकर वर्षों उन्होंने कठिन तपस्या की थी। बहुत दिनों तक मानव समाज से परे भयानक जगलों और दुर्गम पहाड़ों में विचरण करते रहे थे, किन्तु अपनी साधना को सफलीभूत करके अब फिर मानव समाज के उपकार की कामना से इस ओर आ गये थे। योगिराज की इच्छा एक आश्रम बनाने की थी, जिससे भटकते हुए प्राणियों को शान्ति और अध्यात्मवाद का अध्ययन करने का अवसर मिले, साथ ही निर्धनों के लिए वे एक चिकित्सालय भी खोलना चाहते थे। उन्हें अनेक सजीवनी जड़ी बूटियों का ज्ञान था।

बैरिस्टर दीक्षित ने अपनी सम्पत्ति का आधा भाग देकर योगिराज की इच्छा पूरी की और स्वय भी उनके साथ आश्रम में रहकर सेवा और उपासना में तन्मय हो गये।

योगिराज की कृपादृष्टि से उन्हें पूर्ण शान्ति भी प्राप्त हुई, और थोड़े ही दिनों में कठिन अभ्यास और तपस्या के द्वारा वे एक महान् तपस्वी बन गये। योगिराज के अनेक शिष्यों में बैरिस्टर दीक्षित का स्थान सर्वप्रथम था। चारों ओर उनकी ख्याति फैल रही थी। उनपर भी लोगों की श्रद्धा भक्ति उनके गुरु से कम न थी।

योगिराज के शरीर छोड़ देने पर आश्रम ने गुरुदेव के पद के योग्य बैरिस्टर दीक्षित को ही समझा और उसी दिन से उन्हें महात्मा की पदवी भी मिल गई। अब वे बैरिस्टर दीक्षित नहीं, एक प्रसिद्ध महात्मा थे।

* * * *

सुशीला को आश्रम की सीढ़ियों पर बिठाकर उसके पिता गुरुदेव के

दर्शन करने गये थे। सुरीला सुदूर तक गंगा की उज्ज्वल जलधारा का अवलोकन करती हुई अपने विचारों में निमग्न थी—पिता मुझे सन्यास दिलाना चाहते हैं, कहते हैं, इन महात्मा की कृपा से मुझे कृष्ण भगवान् के दर्शन हो जायेंगे, मुझे शान्ति मिलेगी। जिन नटनागर के स्वप्न में अपनी कविताओं में अंकित करती रहती हूँ, उनके दर्शन पाने से बढ़कर और क्या सौभाग्य हो सकता है, किन्तु पिता से विलग होना भी तो आसान नहीं है। और अपने अन्दर अशान्ति तो मुझे कुछ प्रतीत होती नहीं। लोग मुझे दुखिया समझकर मुझपर करुणा का भाव दिखलाते हैं, मेरे दुःख पर आँसू बहाते हैं, पर मैं तो बहुत सुखी हूँ। पिता मुझे कितना प्यार करते हैं।

मेरे मा नहीं है, भाई बहन भी नहीं है, मैं अकेली हूँ, लेकिन यह अकेलापन अब तक तो कुछ अखरता नहीं है। कितने तो काम हैं, मुझे यह सोचने की फुर्सत ही कब मिलती है कि मैं अकेली हूँ।

पति के मैंने दर्शन ही नहीं किये। कभी कभी मन दुःखी अवश्य होने लगता है। मेरा विवाह पिता ने इतनी छोटी उम्र में क्यों कर दिया! विलायत जाते समय पतिदेव मुझसे मिलने आये थे, पर लज्जावश उनके समीप गई ही नहीं। वे नाराज होकर प्रात ही चले गये, और विदेश ही में उनकी मृत्यु हो गई। यह ख़याल अवश्य हृदय को ठेस पहुँचाता है।

पिता को छोड़कर यहाँ कैसे रहूँगी! यह आश्रम तो मेरे घर जैसा भी नहीं है। गङ्गा का किनारा होने से कुछ सुहावना अवश्य जान पड़ता है। मुझे यहाँ फुलवारी लगाने का कहाँ मिलेगी! कविताएँ भी शायद ही लिख सकूँ। महात्मा की आज्ञा पर ही तो चलना होगा न!

और फिर पिताजी को कितना कष्ट होगा! अँधियाले ही चाय पीते हैं। कोई नौकर भी इतना सबेरे न उठ सकेगा। और मेरी मैना मुझे न देखकर व्याकुल हो जायगी। मदनगोर बिना मेरे खिलाये आधा चारा भी नहीं खायगा।

कहीं नौकरों ने सन्ध्या समय कबूतरों को बन्द न किया तो उन्हें बिल्ली खा जायगी। मेरे पीछे मेरी फुलवारी उजड़ जायगी। मेरी सारी चिड़ियाँ मर

जायँगी। मिसरानी के बनाये खाने से पिताजी का पेट भी नहीं भरेगा। वे और भी दुबले हो जायँगे, खाँसी भी बढ़ जायगी।

सम्भव है, हर समय शराब ही पीते रहें। अभी तो मैं बहुत देर तक उन्हें बातों में लगा लेती हूँ, ताश खेलती हूँ, गाना सुनाती हूँ और सन्ध्या को चिड़ियाखाने की सैर कराती हूँ। फिर सन्ध्या से ही बोतल लेकर बैठ जाया करेंगे। परमात्मा क्या होगा! मैं तो चुपके से शराब में पानी मिला देती हूँ, मेरे पीछे ख़ालिस शराब की पूरी बोतल ही पी गये, तो फिर मुँह से खून गिरने लगेगा। कुछ भी हो, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मेरे पिता शराब पीते हैं, तो क्या हुआ! उनके बराबर मेरे लिए कौन हो सकता है? कौन मुझे वैसा प्यार करेगा! मैं यहाँ किसी प्रकार भी नहीं रहूँगी, किन्तु पिता को कैसे समझाऊँ, वे नाराज़ हो जायँगे। सोचते सोचते सुरीला के सुन्दर नेत्रों से बड़े बड़े मोती जैसे आँसू टपकने लगे।

महात्मा का शिष्य शेखर स्नान करके आ रहा था। दूर से सुरीला उसे श्वेत संगमरमर की प्रतिमा सी जान पड़ी। सीढ़ी पर वह ठिठक गया—कोई दुखिया है, रो रही है। उसने मीठी वाणी से पूछा—देवी, रोती क्यों हो? क्या मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता हूँ!

सुरीला पुरुषों के संसर्ग में नहीं रही थी, लेकिन प्रकृति से ही वह निर्भीक थी। लज्जा के वातावरण में वह पड़ी ही न थी। उसने बालकों की भाँति आँसू पोंछते हुए पूछा—तुम महात्मा के पुत्र हो?

'मैं महात्माजी का शिष्य हूँ। वे मुझपर पुत्र की भाँति ही स्नेह करते हैं।'

'तो तुम कुछ न कर सकोगे, इसी आश्रम के हो न?'

'आश्रमवासी होने से क्या हुआ! कुछ कहो भी तो। सम्भव है, मैं तुम्हारा कुछ उपकार कर सकूँ। हम लोगों का ध्येय ही तो परोपकार है!'

सुरीला ने क्षण भर पहले सोची हुई सारी बातें शेखर को सुना दीं, और बोली—क्या अब तुम मेरे पिता से सिफारिश कर सकोगे? यों तो मेरे पिता मेरी प्रत्येक इच्छा पूरी करते हैं। मगर उनका विचार जम गया है कि इस आश्रम में रहने से मेरा कल्याण होगा।

शेखर ने अत्यन्त मधुर शब्दों में सुरीला के पिता के विचारों का समर्थन किया और अनेक प्रकार से सान्त्वना देते हुए उससे कहा—इसमें क्या हर्ज है ! पिता के आज्ञानुसार कुछ दिन यहाँ रह देखो। यदि मन न लगे तो चली जाना। यहाँ किसी प्रकार का बन्धन थोड़े ही है। तुम्हारी स्वतन्त्रता में भी बाधा नहीं पड़ेगी। अपने इच्छानुसार कविता भी कर सकोगी, फुलवारी में विचरण भी कर सकोगी। यहाँ शिक्षा आदि के अनेक साधन हैं। चलो, तुम्हें यहाँ का पुस्तकालय, और चित्रशाला दिखा लाऊँ। यहाँ तुम चित्रकला, चिकित्सा, संगीत कला आदि का भी अध्ययन कर सकती हो।

सुरीला को यह जानकर बहुत सान्त्वना मिली कि शेखर भी कवि है। वहाँ उसे सहानुभूति भी मिल सकती है। शेखर के शब्दों में जाने कैसी मोहनी थी कि सुरीला आश्रम में रहने को तैयार हो गई।

पिता शीघ्र शीघ्र आने का वादा करके चले गये।

* * * *

सुरीला और शेखर में मित्रता हो गई। आश्रम में स्त्री पुरुष के परस्पर मिलने-जुलने के लिए कोई ख़ास नियम नहीं था। सबको पूर्ण स्वतन्त्रता थी। दोनों आश्रम के कार्य, पूजा उपासना आदि से निवृत्त होकर कलकल नादिनी गंगा के तट पर बैठकर कविता लिखते, कभी वार्तालाप करते और कभी अध्यात्मवाद का विषय लेकर वाद विवाद करते। दोनों के विचारों में किसी प्रकार की अपवित्रता नहीं थी। वे यथाशक्ति गुरुदेव के बताये मार्ग पर चलते। गुरु के उपदेशानुसार ही अध्ययन, उपासना तथा अभ्यास करते।

किन्तु गुरु को यह मैत्री खटकी। एक नवयुवक और नवयुवती का इस प्रकार हर समय का साथ, एक का दूसरे के प्रति इतना अनुराग, उचित नहीं है। संयम में विघ्न पड़ सकता है। शेखर अभी अभ्यास ही कर रहा है, तपस्वी नहीं बन पाया है, और सुरीला को तो आश्रम में प्रविष्ट हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं। गुरुदेव ने अपने ये विचार किसी पर प्रकट तो नहीं किये, पर इन दोनों पर कड़ी दृष्टि रखना प्रारम्भ कर दिया।

उन्होंने शेखर से कहा—पुत्र, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। भगवान् तुम पर शीघ्र प्रसन्न होंगे। अब वह समय आ गया है कि तुम कुछ दिनों तक

एकान्तवास में तपस्या करो। एक सप्ताह बाद तुम्हें एक पहाड़ की कन्दरा में जाना होगा।

शेखर ने मस्तक नत करके गुरुदेव की आज्ञा स्वीकार की। गुरु ने सुशीला का स्थान नीचे से बदलकर छत पर अपने कमरे के समीप एक स्थान दे दिया। सुशीला के मन में शंका हुई—क्या गुरु मेरे ऊपर सन्देह करते हैं!—किन्तु उसने स्वयं ही अपने विचार की निन्दा की और गुरु की श्रद्धा-भक्ति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आने दिया।

उस दिन रजनी दुग्ध-स्नान कर रही थी। उसके शरीर से दुग्ध धारा ने बहकर सारी प्रकृति को श्वेत बना दिया था। उसी श्वेत वातावरण में हरी सुकोमल शय्या पर बैठे सुशीला और शेखर वार्तालाप कर रहे थे। शेखर ने कहा—सुशीला, गुरुदेव की आज्ञा से अब मैं एक मास के लिए एकान्तवास करने जाऊँगा।

सुशीला पर वज्रपात हुआ। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो हृदय की धड़कन बन्द हुई जाती है। वेदना उसके हृदय को मसलने लगी। वह भयभीत हिरणी की नाईं छलकते आँसुओं से शेखर का मुँह निहारती रह गई।

सुशीला की यह दशा देखकर शेखर का मन भी जाने कैसा होने लगा, किन्तु उन्होंने हृदय को दृढ़ करके कहा—घबराती क्यों हो? शान्ति से चित्त को एकाग्र करके रहो। गुरु के उपदेशों पर मनन करना, तुम्हारा चित्त सावधान हो जायगा।

सुशीला ने कहा—शेखर, तुम चले जाओगे, तो मैं किसी प्रकार भी यहाँ न रह सकूँगी। मुझे पिता के यहाँ पहुँचा दो।

'नहीं, सुशीला, इतने दिनों के अभ्यास को इस प्रकार न तोड़ो। मैं गुरुदेव से प्रार्थना करूँगा कि वे अब तुम्हें अधिक समय दें। गुरु के उपदेशों से तुम्हें शान्ति मिलेगी।'

घबराकर सुशीला ने कहा—नहीं, शेखर ऐसा न करना, बल्कि गुरु से कहो, मुझे भी एकान्तवास की आज्ञा दें।

'ऐसा तो नहीं हो सकेगा, सुशीला! गुरुदेव तुम्हें एकान्तवास में जाने की आज्ञा नहीं देंगे। अभी तुम उस कठिन तपस्या में सफल न हो सकोगी।'

'तो शेखर, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मुझे क्षमा करना शेखर, गुरु से मुझे एक प्रकार का भय लगता है। उनसे अधिक मुझे तुमपर '

बीच ही में बात काटकर शेखर ने ताड़ना के शब्दों में कहा—कैसी बातें करती हो सुरीला! गुरुदेव पर भक्ति करो।

काँपते हुए स्वर से सुरीला ने कहा—शेखर, मैंने अनेक बार देखा है, गुरु छिपकर हम दोनों की बातें सुनते हैं।

'तो दोष क्या है? हम लोगों पर दृष्टि रखना गुरु का कर्तव्य है।'

सिसकते हुए सुरीला बोली—इतना ही नहीं, शेखर, रात्रि में मुझे कई बार शुबहा हुआ, किवाड़ की दराज में से कोई मेरे कमरे में झाँकता है। तुमने जो अपना चित्र बनाकर मुझे दिया था, वह मेरे कमरे से कोई चुराकर ले गया। मुझे यह काम गुरु का ही जान पड़ता है। मैं यहाँ नहीं रहूँगी, या फिर तुम कुछ दिनों बाद जाना।

सुरीला सिसक सिसककर रोने लगी। क्षण भर मौन रहने के बाद उसने शेखर से कहा—शेखर, मेरा मन तुमसे भय नहीं खाता।

इस सरलता पर शेखर हँस दिया। और इस समय इस प्रसंग को भुलाने के लिए उसने कहा—आओ, कुछ देर रामायण का पाठ करें।

× × ×

सुरीला रामायण गाने लगी। शेखर आधा लेटा हुआ सुनने लगा। पुष्पवाटिका का मनोरम प्रसंग चल रहा था। दोनों तुलसीदास के भक्ति रस का स्वाद ले रहे थे, बिलकुल रामायण में तन्मय थे।

और गुरु? गुरु छत की खिड़की पर आधी रात में दोनों के बीच का भेद लेने बैठे थे। जाग्रत अवस्था में ही गुरु को स्वप्न सा भान हुआ—यह सुरीला कितनी सुन्दर है, मानो सौन्दर्य स्वयं देवीरूप में प्रकट हुआ है। रागिणी का रूप इसकी छाया के बराबर भी न था।

गुरु चौंक पड़े। आज वर्षों बाद अतीत काल की स्मृति क्यों हिलोरें लेने लगी? 'हरि ओ३म्' उच्चारण करके गुरु ने आकाश पर हँसते हुए चन्द्रमा को देखा और फिर क्षितिज पर बैठी हुई सुरीला पर दृष्टि डाली। उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो चन्द्रमा का कुछ भाग टूटकर सुरीला बन गया है। उन्हें

प्रतीत होने लगा कि भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की है। सुरीला चन्द्रमा का अंश ही नहीं, रामायण की सीता भी है, विष्णु की लक्ष्मी भी है, कृष्ण की राधिका भी है और कामदेव की सौन्दर्यवती रति भी है। गुरु वेसुध होकर, भक्तिसागर में डूबकर, राधा, लक्ष्मी, सीता के दर्शनामृत का पान करने लगे।

इस समाधिस्थ अवस्था में कितना समय व्यतीत हो गया, गुरु जान ही न सके। कुक्कुट ने मदमाती बाँग से ऊषा के आगमन की सूचना दी, तो शेखर ने कहा—सुरीला, उठो, आज आश्रम की धुलाई करने की हम लोगों की पारी है। मैं पानी लाता हूँ, तुम चलकर पहले गुरुदेव का कमरा झाड़ दो।

गुरु खिड़की पर सर रखे निद्रा में निमग्न थे। यह समय तो उनका वायु-सेवन के लिए आश्रम से बाहर जाने का है। सुरीला झाड़ू लिये गुरु के जागने की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी रही। गुरु मनोरंजक स्वप्न देख रहे थे—वृन्दावन विहार वन में चन्द्रदेव पूर्ण कलाओं से शोभायमान हैं। मनोमुग्धकारी रजतचन्द्रिका विपिन को सौरभ दान कर रही है, और उसी विमल चाँदनी की शय्या पर सौ चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित करनेवाले भगवान् कृष्ण दाहने कर में मुरलिका लिये नृत्य कर रहे हैं, और उनके बायें पार्श्व में प्रियतमा राधिका शोभा पा रही हैं।

अनेक देवताओं के साथ गुरु भी विमान पर बैठे पुष्प वर्षा कर रहे हैं। भक्तवत्सल भगवान् कृष्ण ने मुरलिका ऊपर उठाकर गुरु को समीप आने का संकेत किया। भक्ति में उन्मत्त होकर गुरु विमान से कूद पड़े और भगवान् ने उन्हें अपने में लीन कर लिया। अब भगवान् कृष्ण और गुरु जुदा नहीं थे।

फिर एक बार राधिका के मुख पर दृष्टि डालकर मुरलीमनोहर ने कहा—प्रिये, संसार में तुम सुरीला थीं और मैं महात्मा था। अभी मृत्युलोक में फिर चलकर प्राणियों का उद्धार करना है।

इतना कहकर भगवान् पूर्ण गति से नृत्य करने लगे। रासलीला समाप्त

कर वे राधिका को लेकर फिर संसार में चले आये। अभी पृथ्वी का पूर्णोद्धार नहीं हुआ था।

राधिका बोली—प्राणेश, क्या मुझे अभी और विलग रहना होगा! इस बार की जुदाई तो सीता वनवास से भी अधिक हो गई, देव!

कृष्ण ने राधिका को आलिंगन कर लिया और बोले—नहीं प्रिये, अब हम तुम साथ रहकर ही पृथ्वी का उद्धार करेंगे।

जागकर भी गुरु को चेतना नहीं हुई। उन्मत्त की भाँति सुरीला का हाथ पकड़कर बोले—राधिका, प्रिये!

सुरीला गुरु का हाथ झटककर चीखती हुई भागी—मुझे बचाओ, शेखर!

शेखर जल की बाल्टी लेकर सीढ़ियाँ पार कर चुका था। यह दृश्य देख कर अप्रतिभ सा रह गया। उसी समय सुरीला बिजली की भाँति टूटकर उसके पैरों के समीप गिर पड़ी। बाल्टी की कोर माथे में झुक गई और खून की धार बह निकली।

बेसुध सी सुरीला को गोद में लेकर शेखर आश्रम से बाहर हो गया। सारे आश्रम में कोलाहल मच गया। घटना का पता लगाने के लिए आश्रम-वासी गुरु के समीप गये, लेकिन दरवाजे बन्द थे। सबों ने समझा, गुरु समाधि में हैं। शेखर ने बिना कुछ कहे ही साथियों से विदा माँग ली।

* * * *

पिता से चिमटकर सुरीला खूब रोई। पिता भी रोने लगे।

'*अच्छा किया, आ गई सुरीला! अब मेरा अन्तिम समय निकट जान पड़ता है।*'

बात करते-करते उनके मुँह से लाल लाल रक्त बहने लगा। शेखर उपचार में लग गया। सुरीला और भी बिलख उठी—मुझे अपने से जुदा करके तुमने अपनी यह गति कर ली पिताजी!

* * * *

नौकर ने शेखर के नाम एक पत्र लाकर दिया—

'शेखर, सुरीला ने मेरी आँखें खोल दीं। मैं भ्रम में था। जिसे अब

प्रतीत होने लगा कि भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की है। सुरीला चन्द्रमा का अंश ही नहीं, रामायण की सीता भी है, विष्णु की लक्ष्मी भी है, कृष्ण की राधिका भी है और कामदेव की सौन्दयवती रति भी है। गुरु बेसुध होकर, भक्तिसागर में डूबकर, राधा, लक्ष्मी, सीता के दर्शनामृत का पान करने लगे।

इस समाधिस्थ अवस्था में कितना समय व्यतीत हो गया, गुरु जान ही न सके। कुक्कुट ने मदमाती बाँग से ऊषा के आगमन की सूचना दी, तो शेखर ने कहा—सुरीला, उठो, आज आश्रम की धुलाई करने की हम लोगों की पारी है। मैं पानी लाता हूँ, तुम चलकर पहले गुरुदेव का कमरा झाड़ दो।

गुरु खिड़की पर सर रक्खे निद्रा में निमग्न थे। यह समय तो उनका वायु सेवन के लिए आश्रम से बाहर जाने का है। सुरीला झाड़ू लिये गुरु के जागने की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी रही। गुरु मनोरंजक स्वप्न देख रहे थे—वृन्दावन विजन वन में चन्द्रदेव पूर्ण कलाओं से शोभायमान हैं। मनोमुग्धकारी रजतचन्द्रिका विपिन को सौरभ दान कर रही है, और उसी विमल चाँदनी की शय्या पर सौ चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित करनेवाले भगवान् कृष्ण दाहने कर में मुरलिका लिये नृत्य कर रहे हैं, और उनके बायें पार्श्व में प्रियतमा राधिका शोभा पा रही हैं।

अनेक देवताओं के साथ गुरु भी विमान पर बैठे पुष्प वर्षा कर रहे हैं। भक्तवत्सल भगवान् कृष्ण ने मुरलिका ऊपर उठाकर गुरु को समीप आने का संकेत किया। भक्ति में उन्मत्त होकर गुरु विमान से कूद पड़े और भगवान् ने उन्हें अपने में लीन कर लिया। अब भगवान् कृष्ण और गुरु जुदा नहीं थे।

फिर एक बार राधिका के मुख पर दृष्टि डालकर मुरलीमनोहर ने कहा—प्रिये, संसार में तुम सुरीला थीं और मैं महात्मा था। अभी मृत्युलोक में फिर चलकर प्राणियों का उद्धार करना है।

इतना कहकर भगवान् पूर्ण गति से नृत्य करने लगे। रासलीला समाप्त

कर वे राधिका को लेकर फिर संसार में चले आये। अभी पृथ्वी का पूर्णोद्धार नहीं हुआ था।

राधिका बोली—प्राणेश, क्या मुझे अभी और विलग रहना होगा? इस बार की जुदाई तो सीता वनवास से भी अधिक हो गई, देव!

कृष्ण ने राधिका को आलिंगन कर लिया और बोले—नहीं प्रिये, अब हम तुम साथ रहकर ही पृथ्वी का उद्धार करेंगे।

जागकर भी गुरु को चेतना नहीं हुई। उन्मत्त की भाँति सुरीला का हाथ पकड़कर बोले—राधिका, प्रिये!

सुरीला गुरु का हाथ झटककर चीखती हुई भागी—मुझे बचाओ, शेखर!

शेखर जल की बाल्टी लेकर सीढ़ियाँ पार कर चुका था। यह दृश्य देख कर अप्रतिभ-सा रह गया। उसी समय सुरीला बिजली की भाँति टूटकर उसके पैरों के समीप गिर पड़ी। बाल्टी की कोर माथे में घुस गई और खून की धार बह निकली।

बेसुध सी सुरीला को गोद में लेकर शेखर आश्रम से बाहर हो गया। सारे आश्रम में कोलाहल मच गया। घटना का पता लगाने के लिए आश्रम वासी गुरु के समीप गये, लेकिन दरवाजे बन्द थे। सबों ने समझा, गुरु समाधि में हैं। शेखर ने बिना कुछ कहे ही साथियों से विदा माँग ली।

*　　　　*　　　　*　　　　*

पिता से चिमटकर सुरीला खूब रोई। पिता भी रोने लगे।

'अच्छा किया, आ गई सुरीला! अब मेरा अन्तिम समय निकट जान पड़ता है।'

बात करते-करते उनके मुँह से लाल लाल रक्त बहने लगा। शेखर उपचार में लग गया। सुरीला और भी बिलख उठी—मुझे अपने से जुदा करके तुमने अपनी क्या गति कर ली पिताजी!

*　　　　*　　　　*　　　　*

नौकर ने शेखर के नाम एक पत्र लाकर दिया—

'शेखर, सुरीला ने मेरी आँखें खोल दीं। मैं भ्रम में था। जिसे अब

तक स्वप्न समझा था, वास्तव में हक़ीक़त थी, और जिसे हक़ीक़त समझी थी, वही स्वप्न था। मुझे अपने मार्ग का दिग्दर्शन अब हुआ। मैं जाता हूँ और आश्रम का भार तुम दोनों पर छोड़ता हूँ। तुम सुरीला से विवाह कर लो, तुम्हारा कल्याण होगा। मानुषिक प्रेम द्वारा ही तुम्हें दिव्य प्रेम का परिचय मिलेगा। प्रवृत्तियों के दमन करने से नहीं, बल्कि उन्हें आध्यात्मिक रूप में परिवर्तित करने से ही वास्तविक शान्ति की प्राप्ति होगी। यही तुम्हारे गुरु का अन्तिम उपदेश है।'

———

श्री 'अज्ञेय'

श्रीसच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म एक बहुत ही प्रतिष्ठित एव सम्भ्रान्त ब्राह्मणकुल में १९११ ई० में हुआ। और जब पहले-पहल १९३२ में वे अपनी रचनाएँ लेकर हिन्दी-ससार में प्रविष्ट हुए तो लोगों को उनकी मेधा और प्रतिभा पर आश्चर्य हुआ। सचमुच ही श्रीअज्ञेय का हिन्दी ससार में आगमन एक विशेष घटना है। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है—एक कवि, कहानी-लेखक, उपन्यास-लेखक, निबंध लेखक, शिल्पी, चित्रकार सभी के रूप में वे बहुत ही सफल हैं। अंग्रेजी पर भी अच्छा अधिकार है और अंग्रेजी में बहुत-सी कविताएँ लिखी हैं।

कहानियों के अन्दर आपके इतनी गहरी वेदना होती है जो किसी को हिलाये बिना नहीं रह सकती।

आपका एक उपन्यास 'शेखर एक जीवनी', कहानियों के दो सग्रह 'विपथगा' और 'परपरा' और कविताओं के दो सग्रह 'भग्नदूत' और 'चिन्ता' प्रकाशित हो चुके हैं।

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान् ने स्वप्न में दर्शन दिये, और कहा—ज्ञान, मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है। उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो।

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, संसार अन्धकार में पड़ा है। और मानवजाति उस अन्धकार में पथभ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, अन्धकार से बाहर खींचना होगा, उसका नेता बनकर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सबको सुनाकर कहने लगा—मैं मसीह हूँ, पैग़म्बर हूँ। भगवान् का प्रतिनिधि हूँ। मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिए एक सन्देश है।

लेकिन किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। कुछ उसकी ओर देखकर हँस पड़ते, कुछ कहते, पागल है, अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो! और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

  

आख़िर तंग आकर वह एक अँधेरी गली में छिपकर बैठ गया, और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानव जाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से लड़ना होगा।

तभी पास कहीं से उसने स्त्री के करुण क्रन्दन की आवाज़ सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक नन्हा छोटा सा बच्चा पड़ा है, जो या तो बेहोश है या मर चुका है, क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है।

ज्ञान ने पूछा—बहन क्यों रोती हो?

उस स्त्री ने कहा—मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था। जब लोगों को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भी भूख से मर रहा है।

ज्ञान का निश्चय और दृढ हो गया। उसने कहा—तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।—और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। उसने कहा—धर्म झूठा बन्धन है। परमात्मा एक है, अबाध है और धर्म से परे है। धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग रखता है, अत हमारा शत्रु है।

लेकिन किसी ने कहा—जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृता औरत को अपने साथ रखता है, उसकी बात हम क्यों सुनें? वह समाज से पतित है, नीच है।

तब लोगों ने उसे समाजच्युत करके बाहर निकाल दिया।

  

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने के पहले समाज से लड़ना है। जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खण्डन नहीं हो सकता।

तब वह इसी प्रकार प्रचार करने लगा—वह कहने लगा—ये धर्मध्वजी, ये पुरोहित, मुल्ला, ये कौन हैं? इन्हें क्या अधिकार है हमारे जीवन को बाँध रखने का? आओ, हम इन्हें दूर कर दें, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करें, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ सकें।

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड ले गये, क्योंकि वह वर्गों में परस्पर विरोध जगा रहा था।

  

ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था। यही तो हमारी क्षुद्रताओं को स्थायी बनाये रखते हैं, और उससे लाभ उठाते हैं। पहले अपने को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब, गुप्त और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया। वह मैले कुचैले फटे पुराने ख़ाकी कपडे पहने हुए था। मुख पर झुर्रियाँ पडी थीं, आँखों में एक तीखा दर्द था। उसने ज्ञान से कहा—आप मुझे कुछ काम दें, ताकि मैं अपनी रोटी कमा सकूँ। मैं विदेशी हूँ। आपके देश में भूखा मर रहा हूँ।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

आपका जन्म १९१० में जालन्धर में हुआ था। परिवार गरीब था और बच्चे अनेक थे। इस कारण श्री 'अश्क' का बचपन गरीबी में बीता और बड़े होते ही उनको अपनी जीविका की फिक्र करनी पड़ी। प्रारम्भ में आपने उर्दू में कहानियाँ लिखीं, कविताएँ लिखीं और पत्रकार भी रहे। बाद में आपने अपना ध्यान हिन्दी की ओर खींचा और १९३३ ई० से हिन्दी में आपकी कहानियाँ प्रकाशित होना शुरू हुईं। आप एक सफल कवि और नाटककार और उपन्यास-लेखक भी हैं। आपकी कहानियों की स्वाभाविकता और जीवन से उनका सामीप्य उनके विशेष गुण हैं।

आपकी कविताओं के दो संग्रह 'प्रात प्रदीप', 'ऊर्मियाँ', कई नाटक, कहानी-संग्रह और उपन्यास 'सितारों के खेल' प्रकाशित हुए हैं।

काट[1] पी सिकन्दर पे मुसलमान जाट बाकर को अपने माल की ओर लालसा-भरी निगाहों से ताकते देखकर चौधरी नन्दू वृक्ष की छाँह में बैठे-बैठे अपनी ऊँची घरघराती आवाज में ललकार उठा—'रे रे, अठे पे करे है !' और उसकी छः फुट लम्बी सुगठित देह, जो वृक्ष के तने के साथ आराम कर रही थी, तन गई और बटन टूटे होने से मारकू मोटी खादी के कुर्ते से उसका विशाल वक्षस्थल और उसकी बलिष्ठ भुजाएँ दृष्टिगोचर हो उठीं।

बाकर तनिक समीप आ गया। गर्द से भरी हुई छोटी नुकीली दाढ़ी और शरई मूँछों से ऊपर गढों में धँसी हुई दो आँखों में निमिष मात्र के लिए चमक पैदा हुई और जरा मुसकराकर उसने कहा—'डाची[2] देख रहा था चौधरी, कैसी खूबसूरत और जवान है, देखकर भूख मिटती है।'

अपने माल की प्रशंसा सुनकर चौधरी का तनाव कुछ कम हुआ, खुश होकर बोला—'किसी साँड[3] ?'

'वह पहली—तरफ से चौथी।'—बाकर ने इशारा करते हुए कहा।

ओकांद[4] पे एक घने पेड़ की छाया में आठ दस ऊँट बँधे थे, उन्हीं में वह जवान साँडनी अपनी लम्बी सुडौल और सुन्दर गर्दन बढाये घने पत्तों में मुँह मार रही थी। माल मंडी में, दूर जहाँ तक नजर जाती थी, बड़े बड़े ऊँचे ऊँटों, सुन्दर साँडनियों, काली मोटी बेडौल भैंसों, सुन्दर नागौरी सींगोंवाले बैलों के सिवा कुछ न दिखाई देता था। गधे भी थे, पर न होने के बराबर। अधिकांश तो ऊँट ही थे। बहावलनगर के मरुस्थल में होनेवाली माल मंडी में उनका आधिक्य है भी स्वाभाविक। ऊँट रेगिस्तान का जहाज है, इस रेतीले इलाके में आमदरफ्त, खेती बारी और बारबरदारी का काम उसी से होता है। पुराने समय में जब गायें दस दस और बैल पन्द्रह पन्द्रह रुपये में मिल जाते थे, तब भी अच्छा ऊँट पचास से कम में हाथ न आता था। अब भी जब इस इलाके में नहर आ गई है और पानी की इतनी

१ काट = गाँव। २ डाची = साँडनी। ३ कौनसी डाची ? ४ ओकांद एक

फिल्लत नहीं रही, ऊँट का महत्त्व कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ा ही है। सवारी के ऊँट दो-दो सौ से तीन तीन सौ तक पाये जाते हैं और बाही तथा बारबरदारी के भी अस्सी-सौ से कम में हाथ नहीं आते।

तनिक और आगे बढ़कर बाक़र ने कहा—सच कहता हूँ चौधरी, इस जैसी सुन्दरी साँडनी मुझे सारी मंडी में दिखाई नहीं दी।

हर्ष से नन्दू का सीना दुगना हो गया, बोला—आ एक ही के, इह तो सगली फूटरी हैं। हूँ तो इन्हें चारा फलूँसी नीरिया करूँ[1]।

धीरे से बाक़र ने पूछा—बेचोगे इसे?

नन्दू ने कहा—बेचने लई तो मंडी मा आऊँ हूँ।

'तो फिर बताओ कितने को दोगे?'—बाक़र ने पूछा।

नन्दू ने नख शिख तक बाक़र पर एक दृष्टि डाली और हँसते हुए बोला—तन्ने चाहीजै का तेरे धनी बेई मोल लेसी[2]?'

'मुझे चाहिए'—बाक़र ने दृढ़ता से कहा।

नन्दू ने उपेक्षा से सिर हिलाया। इस मज़दूर की यह बिसात कि ऐसी सुन्दर साँडनी मोल ले, बोला—तू कि लेसी?

बाक़र की जेब में पड़े हुए डेढ़ सौ के नोट जैसे बाहर उछल पड़ने को व्यग्र हो उठे तनिक जोश के साथ उसने कहा—तुम्हें इससे क्या, कोई ले, तुम्हें अपनी क़ीमत से ग़रज़ है, तुम मोल बताओ?

नन्दू ने उसके जीर्ण-शीर्ण कपड़ों, घुटनों से उठे हुए तहमद और जैसे नूह के वक्त से भी पुराने जूते को देखते हुए टालने की ग़रज़ से कहा—जा-जा तू इसी बिसी ले आई, इगों मोल तो आठ बीसी सूँ घाट के नाहीं।[3]

एक निमिष के लिए बाक़र के थके हुए व्यथित चेहरे पर आह्लाद की रेखा सी झलक उठी। उसे डर था कि चौधरी कहीं ऐसा मूल्य न बता दे,

---

१ यह एक ही क्या, यह तो सब ही सुन्दर हैं, मैं इन्हें चारा फलूँसी (ग्वारा और मोट) देता हूँ। २ तुझे चाहिए, या तू अपने मालिक के लिए मोल ले रहा है? ३ जा जा, तू कोई ऐसी-वैसी साँड खरीद ले, इसका मूल्य तो १६०) से कम नहीं।

जो उसकी बिसात से बाहर हो, पर जब अपनी ज़बान से उसने १६०) बताये, तो उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। १५०) तो उसके पास थे ही। यदि इतने पर भी चौधरी न माना, तो दस रुपये वह उधार कर लेगा। भाव-ताव तो उसे करना न आता था, झट से उसने डेढ़ सौ के नोट निकाले और नन्दू के आगे फेंक दिये। बोला—गिन लो, इनसे अधिक मेरे पास नहीं, अब आगे तुम्हारी मर्ज़ी।

नन्दू ने अन्यमनस्कता से नोट गिनने आरम्भ कर दिये, पर गिनती ख़त्म करते ही उसकी आँखें चमक उठीं। उसने तो बाक़र को टालने के लिए ही मूल्य १६०) बता दिया था। नहीं मंडी में अच्छी से अच्छी डाची भी डेढ़ सौ में मिल जाती और इसके तो १४०) पाने की भी उसने स्वप्न तक में कल्पना न की थी। पर शीघ्र ही मन के भावों को मन ही में छिपाकर और जैसे बाक़र पर अहसान का बोझ लादते हुए नन्दू बोला—साँड तो मेरी दो सौ की है, पण जा सागी मोल मियाँ तन्ने दस छाड़ियाँ[1]। और यह कहते कहते उठकर उसने साँडनी की रस्सी बाक़र के हाथ में दे दी।

क्षण भर के लिए उस कठोर व्यक्ति का जी भर आया। यह साँडनी उसके यहाँ ही पैदा हुई और पली थी, आज पाल पोस कर उसे दूसरे के हाथ में सौंपते हुए उसके मन की कुछ ऐसी हालत हुई, जो लड़की को ससुराल भेजते समय पिता की होती है। जरा काँपती आवाज़ में, स्वर को तनिक नर्म करते हुए, उसने कहा—आ साँड सोरी रहेड़ी है, तू इन्हें रहेड़ में इम गेर देई[2]।' ऐसे ही, जैसे श्वसुर दामाद से कह रहा है—मेरी लड़की लाड़ों पली है, देखना इसे कष्ट न होने देना।

आह्लाद के परों पर उड़ते हुए बाक़र ने कहा—तुम ज़रा भी चिन्ता न करो, जान देकर पालूँगा।

नन्दू ने नोट अंटी में सँभालते हुए जैसे सूखे हुए गले को ज़रा तर करने के लिए घड़े में से मिट्टी का प्याला भरा—मंडी में चारों ओर धूल उड़

---

१ साँडनी तो मेरी २००) की है, पर जा सारी कीमत म से तुम्हें दस रुपये छोड़ दिये। २ साँडनी अच्छी तरह रखी गई है, तू इसे यों ही मिट्टी में न रोल देना।

रही थी। शहरों की माल मंडियों में भी—जहाँ बीसियों अरदाई नलके लग जाते हैं और सारा सारा दिन छिड़काव होता रहता है—धूल की कमी नहीं होती, फिर रेगिस्तान की मंडी पर तो धूल का ही साम्राज्य था। गन्नेवाले की गंडेरियों पर, हलवाई के हलवे और जलेबियों पर और खोंचेवाले के दही-पकौड़ी पर, सब जगह धूल का पूर्णाधिकार था। यहाँ वह सर्वव्यापक थी, सर्वशक्तिमान थी। घड़े का पानी टंकियों द्वारा नहर से लाया गया था, पर यहाँ आते आते कीचड़ हो गया था। नन्दू का ख्याल था कि निथरने पर पीयेगा, पर गला कुछ सूख रहा था। एक ही घूँट में प्याले को खत्म करके नन्दू ने बाक़र से भी पानी पीने के लिए कहा। बाकर आया था तो उसे ग़जब की प्यास लगी हुई थी, पर अब उसे पानी पीने की फ़ुर्सत कहाँ? वह रात होने से पहले पहल गाँव पहुँच जाना चाहता था, डाची की रस्सी पकड़े हुए वह धूल को जैसे चीरता हुआ चल पड़ा।

× × × ×

बाक़र के दिल में बड़ी देर से एक सुन्दर और युवा डाची ख़रीदने की लालसा थी। जाति से वह कमीन था। उसके पूर्वज कुम्हारों का काम करते थे, किन्तु उसके पिता ने अपना पैत्रिक काम छोड़कर मजदूरी करना ही शुरू कर दिया था, और उसके बाद बाक़र भी इसी से अपना और अपने छोटे-से कुटुम्ब का पेट पालता आता था। वह काम अधिक करता हो, यह बात न थी, काम से उसने सदैव जी चुराया था, और चुराता भी क्यों न जब कि उसकी पत्नी उससे दुगुना काम करके उसके भार को बाँटने और उसे आराम पहुँचाने के लिए मौजूद थी। कुटुम्ब बड़ा नहीं था—एक वह एक उसकी पत्नी और एक नन्हीं सी बच्ची। फिर किसलिए वह जी हलाकान करता? पर क्रूर और बेपीर विधाता—उसने उसे उस विस्मृति से, सुख की उस नींद से जगाकर अपना उत्तरदायित्व महसूस करने पर बाधित कर दिया, उसे बता दिया कि जीवन में सुख ही नहीं, दुःख भी है, परिश्रम भी है।

पाँच वर्ष हुए उसकी वही आराम देनेवाली प्यारी पत्नी सुन्दर गुड़िया-सी लड़की को छोड़कर परलोक सिधार गई थी। मरते समय अपनी सारी करुणा को अपनी फीकी और श्रीहीन आँखों में बटोरकर उसने बाक़र से

कहा था—मेरी रज़िया अब तुम्हारे हवाले है, इसे कष्ट न होने देना।—और इसी एक वाक्य ने बाक़र के समस्त जीवन के रुख़ को पलट दिया था। उसकी मृत्यु के बाद ही वह अपनी विधवा बहन को उसके गाँव से ले आया था और अपने आलस्य तथा प्रमाद को छोड़कर अपनी मृत पत्नी की अन्तिम अभिलाषा को पूरा करने में संलग्न हो गया था। यह सम्भव भी कैसे था कि अपनी पत्नी की—जिसे वह दिलोजान से प्यार करता था, जिसके निधन का ग़म उसके हृदय के अज्ञात पर्दों तक छा गया था, जिसके बाद उम्र होने पर भी उसने दूसरा विवाह न किया था—अपनी उसी प्यारी पत्नी की अन्तिम अभिलाषा की अवहेलना करता?

वह दिन-रात काम करता था, ताकि अपनी मृत पत्नी की उस धरोहर को, अपनी उस नन्हीं सी गुड़िया को भाँति भाँति की चीज़ें लाकर प्रसन्न रख सके। जब भी कभी वह मंडी को आता, तो नन्हीं सी रज़िया उसकी टाँगों से लिपट जाती और अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उसके गर्द से भरे हुए चेहरे पर जमाकर पूछती—अब्बा, मेरे लिए क्या लाये हो? तो वह उसे अपनी गोद में ले लेता और कभी मिठाई और कभी खिलौनों से उसकी झोली भर देता। तब रज़िया उसकी गोद से उतर जाती और अपनी सहेलियों को खिलौने या मिठाई दिखाने के लिए भाग जाती। यही गुड़िया जब आठ वर्ष की हुई तो एक दिन मचलकर अपने अब्बा से कहने लगी—अब्बा, हम तो डाची लेंगे। अब्बा, हमें डाची ले दो। भोली भाली निरीह बालिका! उसे क्या मालूम कि वह एक विपन्न ग़रीब मज़दूर की बेटी है, जिसके लिए डाची ख़रीदना तो दूर रहा, डाची की कल्पना करना भी गुनाह है। रूखी हँसी हँसकर बाक़र ने उसे अपनी गोद में ले लिया और बोला—रज्जो, तू तो खुद डाची है। पर रज़िया न मानी। उस दिन मशीर माल अपनी साँड़नी पर चढ़कर अपनी छोटी लड़की को अपने आगे बिठाये दो चार मज़दूर लेने के लिए स्वभूमि-स्थित उस कोट में आये थे। तभी रज़िया के नन्हें-से मन में डाची पर सवार होने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो उठी थी, और उसी दिन से बाक़र का रहा-सहा प्रमाद भी दूर हो गया था।

उसने रज़िया को टाल तो दिया था, पर मन ही मन उसने प्रतिज्ञा कर